काव्यांग-कौमुदी

द्वितीय कला

विश्वनाथप्रसाद मिश्र
मोहनवल्लभ पंत

काव्यांग-कौमुदी

द्वितीय कला

लेखक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र
प्राध्यापक काशी विश्वविद्यालय

और

मोहनवल्लभ पंत
अध्यक्ष हिंदी-संस्कृत-विभाग
महाराणा कालेज, उदयपुर

प्रकाशक

नंदकिशोर ऐंड ब्रदर्स
बनारस सिटी

प्रकाशक—

नंदकिशोर भार्गव
नंदकिशोर ऐंड ब्रदर्स
चौक, बनारस।

परिवर्धित संस्करण, १०००] २००६ [मूल्य १॥।)

मुद्रक—
श्री रामेश्वर पाठक
तारा यन्त्रालय,
कमच्छा, बनारस।

वक्तव्य

'काव्यांग-कौमुदी' की यह 'कला' इंटरमीडियेट के विद्यार्थियों की आवश्यकता-पूर्ति के निमित्त प्रस्तुत की गई है। यह भाग प्रथम कला का परिष्कृत एवं परिवर्द्धित रूप है। क्रमिक विकास के सिद्धांतानुसार निर्मित होने के कारण उक्त कक्षा के परीक्षार्थियों के अनुरूप विषय और बढ़ा दिए गए हैं। रस, अलंकार और पिंगल-संबंधी अध्यायों के देखने से यह स्पष्ट ज्ञात होगा। प्रथम अध्याय कुछ और पल्लवित किया गया है। ऊँची कक्षा के परीक्षार्थियों के लिए लिखी जाने के कारण यत्र-तत्र सरल उदाहरण भी बदल दिए गए हैं। हमें आशा है, यह भाग उक्त विद्यार्थियों की पूर्णतया आवश्यकता-पूर्ति कर सकेगा।

ब्रह्मनाल, काशी
रामनवमी, १६८८

विश्वनाथप्रसाद मिश्र
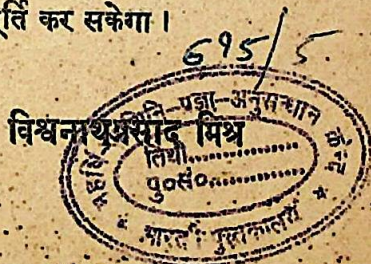
परिवर्धन

इस संस्करण में पूरी पुस्तक का परिष्कार तो किया ही गया है, अलंकारों और दोषों की संख्या में वृद्धि भी की गई है। हिंदी की उच्च कक्षाओं का पठन-पाठन विभिन्न विश्वविद्यालयों और विभिन्न शिक्षा-संघों में भिन्न-भिन्न साज-सज्जा और विधि-व्यवस्था के प्रतिमान से गठित किया गया है। मेरा प्रयास सबकी समन्विति की ओर रहा है। अतः परिवर्धन में सबकी परिपूर्ति बड़े कटकीने से करने का आयास करना पड़ा है। यद्यपि होड़ाहोड़ी में अनेक उद्योग किए गए तथापि प्रस्तुत पुस्तक को प्राप्य मान मिलता ही रहा और इसकी आवृत्तियाँ होती रहीं। इसका यथोचित संस्कार करने का अवसर पहली बार अब मिला। इस रूप को वैसे ही मान और स्वीकृति की आशा-आकांक्षा से शास्त्र-चिंतन के लिए उपस्थित कर रहा हूँ। मधुव्रत इसके रस से तृप्त हों यही अभिलाष है।

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

वाणी-वितान
ब्रह्मनाल, बनारस
शारदीय नवरात्र, २००६

विषय-सूची

तृतीय प्रकाश

चतुर्थ प्रकाश

पंचम प्रकाश

काव्यांग-कौमुदी

द्वितीय कला

प्रथम प्रकाश

विषय-प्रवेश

१—काव्य

आचार्यों ने 'काव्य' की परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। साहित्यदर्पणकार महापात्र विश्वनाथ का कथन है कि 'रसात्मक अर्थात् हृदय में अद्भुत आनन्द उत्पन्न करनेवाले वाक्य को काव्य कहते हैं*।' रसगंगाधर के प्रणेता पंडितराज जगन्नाथ त्रिशूली के मत से 'रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाले शब्द को काव्य कहना चाहिए†।' साहित्याचार्य पं० अंबिकादत्त व्यास लिखते हैं कि 'लोकोत्तर आनन्द देनेवाली रचना का नाम काव्य है‡।' इन परिभाषाओं का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि सभी आचार्यों के कथनों में एक प्रकार की आंतरिक एकता वर्तमान है। उनके कथनानुसार काव्य की दो मुख्य विशेषताएँ हैं—(१) लोकोत्तर आनन्ददायकता और (२) रमणीयता। अतः काव्य की परिभाषा हिंदी-गद्य में यों होगी—"जो भावपूर्ण रमणीय रचना हृदय को प्रभावित कर उसमें अद्भुत एवं अलौकिक आनन्द का संचार करे उसे 'काव्य' कहते हैं।"

काव्य वस्तुतः मनुष्य की अनुभूतियों और मनोभावों का कल्पनामय रूप है। संसार में मनुष्य जो कुछ देखता-सुनता है, उसके द्वारा उसे जितने

---

*वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। †रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।
‡लोकोत्तरानन्ददाता प्रबन्धः काव्यनामभाक्।

प्रकार के अनुभव होते हैं अथवा उससे उसके हृदय में जो मनोवेग उठ खड़े होते हैं वे सब अंत में काव्य का रूप धारण करते हैं। इसीलिए काव्य का मानव-जीवन से और प्रकृति से बहुत गहरा संबन्ध है। कुछ लोगों का तो यहाँ तक विचार है कि काव्य का वास्तविक प्रयोजन दृश्य जगत् और प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों का रागात्मक संबन्ध स्थापित करना है। जो कुछ हो, इसमें संदेह नहीं कि काव्य में मानव-जीवन की विशद व्याख्या और प्रकृति सौंदर्य का विवेचन मुख्य है। मनुष्य की जिज्ञासा वृत्ति और आत्माभिव्यंजन की इच्छा ने ही काव्य का रूप धारण किया है और इन दोनों ने उक्त विषयों से ही प्रभावित होकर उनका निरूपण किया है।

ऊपर काव्य की परिभाषा में 'लोकोत्तर' शब्द का प्रयोग किया गया है। उसका भाव यह है कि काव्य-पाठक काव्य का अनुशीलन करते समय सांसारिक आनन्द से भिन्न प्रकार के आनन्द का अनुभव करता है। क्योंकि सांसारिक परिस्थिति में मनुष्य अपने आत्मीयों के ही सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होता है। ऐसे संसारी कम मिलेंगे जिनमें इसके विपरीत उदात्त भावनाएँ जागरित हो चुकी हों; पर काव्य-पाठक जिनका वर्णन पढ़ता है, उन्हीं के साथ उसके हृदय का संबन्ध स्थापित हो जाता है और पराये होने पर भी उनके सुख से वह सुखी और दुःख से दुःखी होने लगता है। यही नहीं, संसार में दुःखपूर्ण घटनाओं से मनुष्य अपने को बचाना चाहता है। पर काव्य की करुणापूर्ण घटनाओं से वह भागता नहीं, वरन् वह उन्हें बारबार पढ़ता है। साथ ही साथ वह इन वर्णनों में इतना मग्न हो जाया करता है कि उसे सांसारिक चिंताओं से कुछ समय के लिए छुट्टी मिल जाती है। काव्य-पाठ के समय पाठक की दशा उस योगी के समान हो जाती है जो अपनी समाधि में ब्रह्म का साक्षात्-कार करते हुए शरीर पर होनेवाले आघातों को भूल बैठता है। यही कारण है कि इस काव्यानंद को 'ब्रह्मानंद-सहोदर' कहा गया है।

२—काव्य और साहित्य

यहाँ पर काव्य और साहित्य का संबन्ध निर्दिष्ट करने के पहले 'साहित्य' शब्द का अर्थ जान लेना परमावश्यक है। इसके प्राचीन अर्थ से अर्वाचीन अर्थ में बहुत अन्तर हो गया है। संस्कृत के आचार्यों के मत से काव्य-ग्रंथ वे हैं, जिनमें पूर्वोक्त लक्षण के अनुसार रचना की गई हो। तदनुसार काव्य के अंतर्गत कविता, नाटक, आख्यायिकाएँ आदि सभी आ जाते हैं। रामचरित मानस, रामचंद्रिका, सत्यहरिश्चंद्र, सप्तसरोज, सेवा-सदन आदि सभी 'काव्यग्रंथ' हैं। जिन ग्रंथों में काव्य-लक्षण, उसके भेद (रस-भाव, अलंकार), गुण, दोष, छंद आदि का विवेचन किया जाय वे 'साहित्य' के अंतर्गत हैं। कविप्रिया, काव्यनिर्णय, काव्यकल्पद्रुम, अलंकारमंजूषा, छंद-प्रभाकर आदि 'साहित्य' ग्रंथ हैं। तात्पर्य यह कि प्राचीनों के मत से 'लक्षणग्रंथ' तो 'साहित्य' के नाम से पुकारे जाते थे और 'लक्ष्य' या 'उदाहरण-ग्रंथ' 'काव्य' के नाम से।

अब 'साहित्य' शब्द 'लक्षण-ग्रंथों' के लिए प्रयुक्त होता है। अब उसका प्रयोग दो नये अर्थों में होता है। क्योंकि वह अँगरेजी के 'लिटरेचर' (Literature) शब्द का समानार्थक हो गया है। प्रथम तो इसका प्रयोग समस्त काव्य और साहित्य के समुदाय के लिए होता है, यथा—'वह हिंदी साहित्य का विद्वान् है।' दूसरे इसका प्रयोग किसी भी विषय के ग्रंथ-समुदाय के लिए किया जाने लगा है, यथा—'इतिहास का साहित्य हिंदी में अच्छा नहीं है।' इस प्रकार दूसरे अर्थ में यह कविता, गद्य, नाटक, आख्यायिका, उपन्यास आदि काव्य के अंतर्भूत विषयों के ग्रंथ-समुदायके लिए भी प्रयुक्त हो सकता है और काव्य से भिन्न गणित, ज्योतिष, वैद्यक, दर्शन, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि विषयों की ग्रंथ-समष्टि के लिए भी। इसलिए पहले अर्थ के अनुसार काव्य साहित्य का एक अंग हो गया है और दूसरे अर्थ के अनुसार यथास्थान अंगी।

३—काव्य के भेद

शैली, प्रयोजन और रमणीयता के अनुसार काव्य के भेद किए गए हैं—

(१) **शैली के अनुसार**—काव्य-रचना दो प्रकार से हो सकती है—(१) पद्य में और (२) गद्य में। इन्हीं दो प्रणालियों के कारण काव्य की दो मुख्य श्रेणियाँ की गई हैं—(१) पद्य-काव्य और (२) गद्य-काव्य। एक तीसरी श्रेणी भी है, जो इन्हीं दोनों के मेल से बनती है; उसे 'मिश्र काव्य' अथवा 'चंपू काव्य' कहते हैं। रामचरित-मानस, रामचन्द्रिका, प्रियप्रवास, पल्लव आदि पद्य-काव्य हैं। गद्य-काव्य के अंतर्गत उपन्यास, आख्यायिकाएँ, निबंध आदि आते हैं; इसलिए रंगभूमि, प्रेमपूर्णिमा, पद्मपराग आदि गद्यकाव्य हैं। मिश्र-काव्य या चंपू का प्रचलन हिंदी में बहुत कम है। बाबू जयशंकर 'प्रसाद' का लिखा छोटा सा 'उर्वशी चंपू' अच्छा है। संस्कृत में नलचंपू, रामायणचंपू आदि कई 'चंपू काव्य' हैं।

(२) **प्रयोजन के अनुसार**—काव्य के दो भेद किए जा सकते हैं—(१) दृश्य काव्य और (२) श्रव्य काव्य। जिस काव्य का वास्तविक चमत्कार देखने से अर्थात् अभिनीत होने पर लक्षित हो वह दृश्य काव्य है। सत्यहरिश्चंद्र, अजातशत्रु आदि नाट्यग्रंथ 'दृश्य काव्य' की श्रेणी में आते हैं। जिस काव्य का आनंद या चमत्कार सुनने या पढ़ने से ही प्रतीत हो उसे 'श्रव्य काव्य' कहते हैं। जैसे—रामचरित-मानस, रंगभूमि आदि। इससे स्पष्ट है कि दृश्य काव्यों को 'श्रव्य काव्य' भी कह सकते हैं, पर 'श्रव्य काव्य' दृश्य नहीं कहे जा सकते।

संस्कृत में 'दृश्य काव्य' को 'रूपक' भी कहते हैं। क्योंकि नट या अभिनेता में नाटक के पात्रों के रूप का आरोप किया जाता है*। रूपक

---

* रूपारोपात्तु रूपकम्—साहित्यदर्पण।

के दस भेद हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहा-मृग, अंक, वीथी और प्रहसन। इनमें से 'नाटक' मुख्य है।

हिंदी में दृश्य काव्य के लिए 'नाटक' शब्द का ही व्यवहार किया जाता है; और यह शब्द अंगरेजी के (Drama) का समानार्थी हो गया है। नाटकों में गद्य और पद्य दोनों का व्यवहार किया जाता है, पर उन्हें 'चंपू' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनका वास्तविक चमत्कार और आनंद अधिकतर अभिनय के अधीन है। उनका आनंद केवल सुनकर या पढ़कर भी उठाया जा सकता है, यह दूसरी बात है। श्रव्य काव्य केवल पद्य, केवल गद्य अथवा गद्य-पद्य दोनों में लिखा जा सकता है। इसलिए शैली के अनुसार किए गए भेदों को श्रव्य काव्य के अंतर्गत भी रख सकते हैं।

प्रबंध-भेद से श्रव्य काव्य दो प्रकार का हो सकता है—(१) प्रबंध-काव्य और (२) मुक्तक-काव्य। प्रबंध-काव्य की सीमा में महाकाव्य, खंड-काव्य सभी आ जाते हैं। इसमें कथा-भाग के सहारे पर रचना की जाती है, इसलिए इसका प्रत्येक पद्य दूसरे से जुड़ा हुआ रहता है। उसका वास्तविक महत्त्व प्रबंध-काव्य के भीतर ही रहता है, उसके बाहर वैसा नहीं; जैसे—पदमावत। किंतु मुक्तक-काव्य का प्रत्येक पद्य अपने पहले अथवा पीछे के किसी पद्य से चिपका नहीं रहता। इसमें प्रत्येक पद्य अपने विषय को प्रकट करने के लिए स्वतः समर्थ होता है; जैसे—बिहारी-सतसई।

प्रबंध-काव्य के पद्यात्मक विभाग दो प्रकार के होते हैं—(१) महाकाव्य और (२) खंडकाव्य। महाकाव्य में जीवन के विस्तृत काल की घटनाओं का वर्णन रहता है। शास्त्राभ्यासियों के अनुसार महाकाव्य का नायक धीरोदात्तादि गुणों से युक्त होना चाहिए। वह देवता हो अथवा कुलीन क्षत्रिय हो। कहीं-कहीं अनेक कुलीन नरेश भी नायक हो सकते हैं। शृंगार, वीर और शांत में से कोई एक रस प्रधान होना चाहिए, अन्य रसों को गौण रखना चाहिए। कथा या तो इतिहास प्रसिद्ध हो अथवा लोक-प्रसिद्ध; जैसे—पुराणों की कथाएँ। इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

इस चतुर्वर्ग में से कोई एक फल हो। आरंभ में आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वर्ण्यवस्तु निर्देशात्मक प्रसंग होना चाहिए। इसमें छोटे-बड़े आठ से अधिक सर्ग (अध्याय) हों। प्रत्येक सर्ग में एक छंद का व्यवहार हो, पर सर्गांत के दो-एक पद्यों में छंद बदल देना चाहिए। सर्ग के अंत में आगे की कथा की सूचना भी दे देनी चाहिए। महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रभात, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, विवाह, मंत्र, पुत्र, अभ्युदय आदि का यथाशक्ति सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। ग्रंथ का नाम भी तीन प्रकार से रखने का निर्देश है। कवि के नाम से, जैसे—संस्कृत में 'माघ' (शिशुपाल-वध); चरित्र के नाम से, जैसे—रामचरित-मानस; नायक के नाम से, जैसे—रामचंद्रिका।

जिस काव्य में कथा-भाग जीवन के विस्तृत क्षेत्र से न लेकर उसके सीमाबद्ध घेरे से लेते हैं वह 'खंडकाव्य' है। इसमें कोई छोटी घटना पद्यबद्ध की जाती है। स्मरण रखना चाहिए कि 'खंडकाव्य' 'महाकाव्य' के किसी एक अंश को नहीं कहा जा सकता। खंडकाव्य महाकाव्य के बड़े कथानक से कथा-भाग लेकर बनाया जा सकता है, पर वह स्वतः पूर्ण होता है। महाकाव्य का अंगभूत कदापि नहीं; जैसे—जयद्रथ-वध।

(३) रमणीयता के अनुसार—काव्य के तीन भेद हो सकते हैं। रमणीयता शब्द और उसके अर्थ से संबन्ध रखती है; अतः इन भेदों के बारे में कुछ कहने से प्रथम 'शब्द-शक्ति' का भी कुछ स्वरूप समझा देना आवश्यक प्रतीत होता है।

शब्दों के अर्थ तीन प्रकार की शक्तियों से जाने जाते हैं—(१) अभिधा, (२) लक्षणा और (३) व्यंजना।

(१) अभिधा—पूर्वसंचित ज्ञान अथवा व्याकरण शब्दकोश के आधार पर शब्द के सुनते ही जिस कार्य का सबसे पहले बोध होता है उसे 'वाच्यार्थ' कहते हैं। इस अर्थ को बतलानेवाला शब्द 'वाचक' कह

लाता है और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है उसे 'अभिधा' कहते हैं। जैसे—'बालक रोटी खाता है' इस वाक्य में प्रत्येक शब्द अपने सांकेतिक अर्थ* में ही प्रयुक्त हुआ है।

'वाचक' शब्द चार प्रकार के होते हैं—(१) जातिवाचक, (२) गुणवाचक, (३) द्रव्यवाचक (यदृच्छा) और (४) क्रियावाचक। जातिवाचक शब्द से पदार्थ का सामान्य ज्ञान होता है, जैसे—मनुष्य, गौ, वृक्ष आदि। गुणवाचक शब्द से किसी जाति की विशेषता ज्ञात होती है, जैसे—साँवला (मनुष्य), धवरी (गाय), सूखा (वृक्ष) आदि। द्रव्यवाचक शब्द से केवल एक व्यक्ति का बोध होता है, जैसे—रामचंद्र, कामधेनु, कल्पतरु आदि। क्रियावाचक शब्द से वस्तु के साध्य धर्म† का ज्ञान होता है, जैसे—कामदा, पालक, अभिलाषद आदि।

अनेकार्थवाची शब्दों के एक अर्थ का निर्णय करने के लिए संयोग, साहचर्य, विरोध, प्रकरण, देशबल आदि कई ढंग हैं। ये सब भी अभिधा-शक्ति के ही अंतर्गत आते हैं। विषय को स्पष्ट करने के लिए यहाँ कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

उदाहरण

(१) बिचरत 'हरि' सिंहिनि सहित।

'हरि' शब्द के विष्णु, इंद्र, सर्प, सिंह आदि कई अर्थ होते हैं; पर 'सिंहिनि' शब्द के 'संयोग' से इसका अर्थ यहाँ पर 'सिंह' ही होगा।

---

*व्याकरण, कोशादि में प्रसिद्ध मुख्य अर्थ।

†एक क्रिया को सिद्ध करने के लिए कई छोटे-मोटे कार्य आगे-पीछे करने पड़ते हैं। इनके पूरे उतरने पर ही क्रिया की सिद्धि निर्भर रहती है। ये कार्य देखने में अनेक होने पर भी एक ही प्रधान क्रिया के साधक होते हैं। अतएव इन सबसे सिद्ध होनेवाली क्रिया को 'वस्तु का साध्य धर्म' कहते हैं। जैसे—'पकाना' क्रिया के लिए आग जलाना, बेलना, सेंकना आदि कई कार्य करने पड़ते हैं। यहाँ 'पकाना' साध्य धर्म है।

(२) 'राम'-कृष्ण व्रज-भूषण जानौ।

'राम' शब्द परशुराम, रामचंद्र और बलराम का बोधक होता है; पर 'कृष्ण' के साहचर्य से यहाँ पर इसका अर्थ 'बलराम' ही होगा।

(३) मत्त 'नाग'-तम[१] कुम्भ-बिदारी[२]।
ससि केसरी[३] गगन बनचारी[४]॥

'नाग' शब्द का अर्थ सर्प और हाथी होता है, पर 'केसरी' (सिंह) के प्रसिद्ध 'विरोध' के कारण यहाँ 'नाग' का अर्थ हाथी ही होगा।

(४) सुधा-वृष्टि भइ दुहुँ 'दल' ऊपर।
जिए भालु कपि नहि रजनीचर[५]॥

दल के अर्थ पत्ता, सेना, मंडली आदि होते हैं; पर युद्ध का 'प्रकरण' होने से यहाँ 'दल' का अर्थ 'सेना' ही होगा।

(५) मरु[६] में 'जीवन' दूरि है।

'जीवन' के अर्थ जल, जिंदगी आदि हैं; पर मरुदेश के बल से इसका अर्थ यहाँ पर 'जल' ही होगा।

(२) लक्षणा—यदि शब्द के मुख्यार्थ अर्थात् अभिधा द्वारा प्राप्त वाच्यार्थ को न ग्रहण करके उसी से संबंधित अर्थ को ग्रहण किया जाता है तो उस अर्थ को 'लक्ष्यार्थ' कहते हैं। जिस शब्द से इस अर्थ का बोध होता है उसे 'लक्षक' कहते हैं और इस अर्थ को बतानेवाली शब्द शक्ति का नाम 'लक्षणा' है। मुख्यार्थ को छोड़कर अन्यार्थ के ग्रहण करने का कारण कोई चली आती हुई 'रूढ़ि' होती है अथवा कोई विशेष 'प्रयोजन' होता है।

---

१ अंधकार रूपी हाथी। २ कुम्भ (हाथी के मस्तक) को फाड़नेवाला। ३ चंद्रमा रूपी सिंह। ४ प्रकाश रूपी वन में चलनेवाला। ५ निशाचर (राक्षस)। ६ रेगिस्तान।

उदाहरण

(१) 'फली, सकल मनकामना, 'लूट्यौ' अगनित चैन।
आजु 'अँचै' हरि-रूपसखि, 'भए प्रफुल्लित' नैन ॥

मनकामना कोई वृक्ष नहीं है कि फले, चैन (आनंद) कोई धन नहीं है कि लूटा जा सके, हरि-रूप (श्रीकृष्ण का सौंदर्य) कोई पेय पदार्थ नहीं है कि आचमन किया जाय और नेत्र कोई पुष्प नहीं है कि फूले। किंतु इस प्रकार कहने की रूढ़ि चली आ रही है, अतः यहाँ पर 'फली' का अर्थ 'पूर्ण हुई', 'लूट्यौ' का अर्थ 'पाया', अँचै का अर्थ 'देखकर' और 'प्रफुल्लित भए' का अर्थ 'सुखी हुए' होगा।

(२) कोऊ कोरिक[1] संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, विपति-बिदारन हार ॥

यहाँ यदुपति (श्रीकृष्ण) को 'संपत्ति' कहा गया है। संपत्ति का मुख्यार्थ है 'धन-दौलत'। किंतु यहाँ पर 'संपत्ति' का अर्थ 'पालक', 'सुखदायी' आदि है। यह अन्यार्थ मुख्यार्थ से संबंधित है, क्योंकि संपत्ति भी पालनेवाली और सुखदायिनी होती है। ऐसा करने में 'कवि की भक्ति' सूचित होती है, यही इसका प्रयोजन है।

(३) व्यंजना—वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों के लग चुकने पर भी जो कोई विलक्षण अर्थ बोध होता है उसे 'व्यंग्यार्थ' कहते हैं। जिस शब्द से ऐसा अर्थ-बोध होता है उसे 'व्यंजक' कहते हैं। जिस शब्द-शक्ति से उक्त अर्थ का बोध होता है उसे 'व्यंजना' कहते हैं। मुख्यार्थ से भिन्न जो एक विलक्षण अर्थ निकलता है वह कभी-कभी मुख्यार्थ से घटकर या उसकी बराबरी का होता है और कभी-कभी उससे बढ़कर। इसीलिए व्यंजना के दो भेद कर दिए गए हैं, पहले का नाम 'गुणीभूत व्यंग्य' है और दूसरे का नाम 'ध्वनि'।

---

१ करोड़।

उदाहरण

(१) जनि[१] जल्पना[२] करि सुजस ना सहि सुनहि नीति करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिविध पाटल[३] रसाल[४] पनस[५] समा[६]॥
इक सुमन प्रद[७] इक सुमन-फल इक फलहि केवल लागहीं।
इक कहहिं, कहहिं करहिं[८] अपर, इक करहिं कहत न बागहीं[९]॥

यहाँ रण-क्षेत्र में डींग हाँकनेवाले रावण के प्रति श्रीरामचंद्र की उक्ति है। इसमें रामचंद्रजी का भाव यह है कि हमें जो कुछ करना है करके दिखलाए देते हैं, तुम्हारी तरह लंवी-चौड़ी हाँकना हमारा सिद्धांत नहीं है। यह व्यंग्य वाच्यार्थ की तरह स्पष्ट है, उससे वढ़कर नहीं। इसलिए यहाँ गुणीभूत व्यंग्य है।

(२) हंस-वंस[१०] दसरथ जनक, राम-लखन से भाइ।
जननी! तू जननी भई, बिधि सन कहा बसाइ[११]॥

भरतजी कैकयी को फटकार रहे हैं। इस दोहे में दूसरी वार प्रयुक्त 'जननी' शब्द से राम ऐसे सर्वप्रिय व्यक्ति को वनवास देने की कठोरता व्यंग्य है। यह व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से वढ़कर है, इसलिए यहाँ ध्वनि है, गुणीभूव्यंग्य नहीं।

ऊपर के विवरण से शब्द-शक्ति का स्वरूप स्पष्ट हो गया होगा और यह भी ज्ञात हो गया होगा कि वस्तुतः काव्य में व्यंग्य ही प्रधान है। इसी व्यंग्य के न्यूनाधिक्य और अभाव से काव्य के तीन भेद किए गए हैं--(१) उत्तम, (२) मध्यम और (३) अवर (अधम)। उत्तम काव्य वह है जिसमें ध्वनि की अधिकता हो अर्थात् जहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ विशेष चमत्कार-वाला हो। मध्यम काव्य वह है जिसमें गुणीभूत व्यंग्य हो अर्थात् जहाँ

१ मत। २ बकवाद। ३ गुलाब। ४ आम। ५ कटहल। ६ समान। ७ फूल। ८ दूसरे। ९ वाणी से। १० सूर्यवंश। ११ ब्रह्मा से क्या वश चल सकता है।

व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से न्यून या समकक्ष हो। अवर या अधम काव्य वह है जिसमें व्यंग्य का अभाव हो अर्थात् जहाँ केवल वाच्यार्थ का चमत्कार हो। इसे चित्र (अलंकार) भी कहते हैं। केवल अलंकारों से लदी हुई और व्यंग्य से हीन कविता निम्न श्रेणी की होती है।

४—काव्य के अंग

यहाँ तक काव्य और उसके भेदों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। यहाँ हमें यह बताना है कि काव्य के अंग कौन-कौन से हैं। काव्य का प्रधान गुण है मनुष्य की रागात्मक वृत्तियों का कलापूर्ण निरूपण। वृत्तियों को साहित्य शास्त्र में रस और भाव कहते हैं। रस और भाव दोनों काव्याभ्यासियों के विचार से व्यंग्य के ही अंतर्गत आते हैं। इसलिए व्यंग्य को अथवा, और व्यापक दृष्टि करें तो, रस और भाव को काव्य की आत्मा कहना चाहिए। 'भाषा' काव्य का शरीर है। अलंकार उसका शृङ्गार है। गुण-दोष उसके गुण-दोष हैं। पिंगल या छन्दशास्त्र को बाह्यावरण कहना चाहिए। यद्यपि यह काव्य के अंगों में नहीं आता, पर बाह्यावरण आंतरिक रूप से न सही; बाह्य रूप से ही काव्य के शरीर से संबंधित है। इसलिए काव्य के अंगों का विचार करते समय उसका विवेचन भी आवश्यक है। अतएव इस पुस्तक में रस-भाव, अलंकार, गुण-दोष और पिंगल के ऊपर थोड़ा-बहुत विचार किया जायगा।

द्वितीय प्रकाश

रस-परिचय

१—रस क्या है

काव्य का विवेचन करते हुए हम कह आए हैं कि रस काव्य की आत्मा है। कविता-मात्र में रस ही मुख्य है। 'रस' शब्द के कई अर्थ हैं—जल या जल-सदृश तरल पदार्थ, स्वाद, वैद्यक की विशेष औषध आदि। जब कहा जाता है कि 'यह आम रस से भरा है' तो रस का अर्थ आम में रहनेवाला जल-सदृश तरल पदार्थ होता है। जब हम कहते हैं कि 'यह भोजन सरस है' तो रस का अर्थ स्वाद हो जाता है। इसी प्रकार 'अमुक वैद्य के पास बड़े अच्छे अच्छे रस हैं' कहने में रस का अर्थ औषध विशेष हो जाता है। किंतु काव्य में रस के ये अर्थ नहीं होते। इसमें 'रस' का अर्थ 'आनंद' लिया जाता है। केवल काव्य ही में नहीं, बोलचाल में भी कभी-कभी इस अर्थ में 'रस' का प्रयोग होता है; जैसे—'हमें चिढ़ाने में क्या रस मिलता है?' यहाँ रस का अर्थ मज़ा या आनंद ही लिया जा सकता है।

साहित्य-शास्त्र में इसका प्रयोग 'आनंद' के लिए तो होता है, पर वह असाधारण आनंद के लिए, लौकिक आनंद के लिए नहीं। इसलिए कहना चाहिए कि साहित्य-शास्त्र में 'रस' का अर्थ 'अलौकिक' या 'लोकोत्तर आनंद' है। काव्य के पढ़ने से पाठकों के हृदय में या नाटकों के देखने से दर्शकों के हृदय में जो एक प्रकार का सुखपूर्ण विकास होता है और जिससे वे अपनत्व तक भूल बैठते हैं उस अलौकिक आनंद का नाम 'रस' है। 'यह कविता या छंद सरस है' इस कथन में रस का अर्थ वही अलौकिक आनंद है।

काव्य के पढ़ने से जो अलौकिक आनंद उद्भूत होता है उसका कारण मनोविकार है। मनुष्य के हृदय में अनेक प्रकार के मनोविकार अथवा साहित्य-शास्त्र के शब्द में 'भाव' वर्तमान रहते हैं। ये भाव कविता-पाठ या नाटक देखने से उठ खड़े होते हैं और पाठक या दर्शक उन्हीं भावों में मग्न हो जाता है जिनका प्रसंग चल रहा हो। इसका कारण यह है कि काव्य में मानव-जीवन और उसकी अनुभूतियों का चित्रण रहता है। पाठक या दर्शक पढ़ते या देखते समय उन चित्रणों पर आत्मभाव का आरोप करके स्वयं उसी में लीन हो जाता है। आनंदपूर्ण वर्णन से वह प्रसन्न होता है, हँसी की बात में उसकी बत्तीसी खिल उठती है, वीरतापूर्ण वर्णन से उत्साह भर जाता है और करुण प्रसंग के आ पड़ने से वह रो पड़ता है।

२—रस सामग्री

काव्य के पढ़ने अथवा अभिनय का अवलोकन करने से पाठकों अथवा दर्शकों में जिन भावों का उद्रेक होता है वे सब अप्रकट रूप से उनके हृदय में वर्तमान रहते हैं। अवसर पाकर वे भाव सहसा जागरित हो जाते हैं। जो भाव सब में स्थायीरूप से वर्तमान रहते हैं उन्हें 'स्थायी-भाव' कहते हैं। प्राचीन आचार्यों ने छान-बीन करके ऐसे भावों की एक निश्चित संख्या निर्दिष्ट की है। ये भाव नौ हैं—(१) रति (प्रेम), (२) हास, (३) शोक, (४) क्रोध, (५) उत्साह, (६) भय, (७) घृणा, (८) आश्चर्य और (९) निर्वेद (शांति)। आचार्यों ने अभिनय के उपयुक्त केवल आठ ही स्थायीभाव माने हैं। निर्वेद (शांति) को वे लोग श्रव्य काव्य के ही उपयुक्त मानते हैं। इधर नए-नए आविष्कारों के साथ अनेक स्थायीभावों का भी लोगों ने आविष्कार किया है जिनमें 'वात्सल्य' मुख्य है। प्राचीन आचार्यों ने उसे स्थायी भाव नहीं माना है, केवल भाव ही माना है।

जिन कारणों से इन भावों का उद्रेक होता है उन्हें साहित्यशास्त्र में

'विभाव' कहते हैं। ये विभाव दो प्रकार के माने गए हैं—(१) आलंबन और (२) उद्दीपन। जिनके आधार पर भावों का उद्भाव होता है उन्हें 'आलंबन विभाव' कहते हैं और जिनका सहारा पाकर उद्भूत भाव अधिक बढ़ जाते हैं वे 'उद्दीपन विभाव' कहलाते हैं। यदि किसी की दुष्टता देखकर उस पर क्रोध हो आए तो वह व्यक्ति 'आलंबन' हुआ और उसका दुष्ट काम 'उद्दीपन'।

जब किसी के हृदय में कोई भाव उठता है तो उसका प्रभाव उसके बाह्य अंग पर भी पड़ता है। वह अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करता है; क्रोध से भौंहें चढ़ जाती हैं, आँखें लाल हो जाती हैं, होंठ फड़कने लगते हैं और शरीर काँप उठता है। हँसी से मुख विकसित हो जाता है, दाँत दिखाई पड़ने लगते हैं और मुख से 'हा हा हा हा' का शब्द निकलने लगता है। इसी प्रकार लोग आश्चर्य में अवाक् रह जाते हैं और शोक में रो पड़ते हैं आदि। ये सब चेष्टाएँ 'अनुभाव' कहलाती हैं। क्योंकि इसके द्वारा यह पता चल जाता है कि अमुक व्यक्ति में अमुक भाव का उदय हो रहा है।

उक्त स्थायी भाव के अतिरिक्त कुछ भाव ऐसे भी हैं जो अस्थायी होते हैं। कुछ देर के लिए हृदय में उनका प्रादुर्भाव होता है और फिर वे विलीन हो जाते हैं। जैसे, सरिता में एक के ऊपर एक लहर उठती है और धीरे-धीरे क्षीण होते-होते वह विलीन हो जाती है वैसे ये भाव भी हैं। किंतु इन भावों के कारण रस का परिपाक होने में बहुत कुछ सहायता मिलती है। ये सहकारी भाव साहित्य-शास्त्र में 'संचारी' या 'व्यभिचारी' भाव कहे जाते हैं। मान लीजिए आपके हृदय में किसी की मृत्यु का शोक उत्पन्न हुआ और उसकी अतीत कृतियों को याद करके आप व्यथित होने लगे तो यह 'स्मृति' ही 'संचारी भाव' कही जायगी। इस 'स्मृति' से आपका शोक बढ़ जायगा, यही इसका काय है। शोक की भाँति यह स्थायी नहीं है।

इस प्रकार रस उत्पन्न करने के चार साधन हुए—

(१) स्थायी भाव—जो भाव स्थायी रूप से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में वर्तमान रहते हैं और जिनमें किसी विरोधी अथवा अविरोधी भाव के कारण किसी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न होता।

(२) विभाव – जिनके कारण रस की उत्पत्ति और वृद्धि होती है।

(३) अनुभाव—भावस्थिति के कार्य या फल स्वरूप चेष्टाएँ आदि, जिनसे भाव का संचार होना लक्षित हो जाता है।

(४) संचारी भाव—रस को बढ़ाने में सहायता पहुँचाने वाले अस्थिर भाव।

अतः रस की वास्तविक परिभाषा यों होगी—"जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों की सहायता से पुष्ट होकर स्थायी भाव परिपक्वावस्था को प्राप्त होता है तो उसे 'रस' कहते हैं।

३—स्थायी भाव

'अविरोधी सविरोध सब, भावन सहित प्रधान।
मन-विकार अन्तर अलख, सो थिर भाव प्रमाण॥

जिस भाव को विरोधी अथवा अविरोधी भाव अपने में न तो छिपा सकते हैं, न दबा सकते हैं और जो रस में बराबर स्थिर रहता है उस आस्वाद के मूल भाव को 'स्थायी भाव' कहते हैं।

'स्थायी' शब्द का अर्थ है 'स्थिर रहने वाला'। यह भाव आदि से लेकर अन्त तक रसोत्पत्ति में वर्तमान रहता है, इसी से इसे 'स्थायी' कहते हैं। इसके नौ भेद हैं—१ रति, २ हास, ३ शोक, ४ क्रोध, ५ उत्साह, ६ भय, ७ जुगुप्सा, ८ आश्चर्य और ९ निर्वेद या शम।

(१) रति

'जहाँ भिन्नता तें रहित, दम्पति के चित चाह।

पुरुष का स्त्री पर और स्त्री का पुरुष पर अपूर्व प्रेम उत्पन्न होना 'रति' है।

'रति' शब्द का अर्थ है 'प्रीति'। पुरुष और स्त्री के परस्पर प्रीति की 'रति' संज्ञा है। गुरु, देव, पुत्रादि पर जो 'प्रीति' उत्पन्न होती है उसे केवल भाव कहते हैं। उसका स्त्री पुरुष की प्रीति की भाँति 'स्थायी' नाम नहीं है।

उदाहरण—(दोहा)

निकसत ही ससि उदधि जिमि[1], धीरज कछु इक छौरि[2]।
गंगाधर[3] देखन लगे, बिंबाधर-मुख गौरि[4]॥

यहाँ, महादेवजी का साभिलाष पार्वतीजी की ओर देखना 'रति' स्थायी भाव है। केवल दृष्टिपात करने से यह भाव ही है, रस की पूर्ण अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ है।

(२) हास

'हँसिवे जोग प्रसंग में, उर उपजत आनन्द।'

विचित्र वचनों और रूप की रचना से हृदय में जो एक प्रकार का आनन्द होता है और उससे जो सीमाबद्ध हँसी आती है उसे 'हास' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

बिबस न ब्रज-बनितान के, सखि मोहन मृदु-काय।[5]
चीर[6] चोरि मुकुंद पै, कछुक रहे मुसुकाय॥

यहाँ पर श्रीकृष्ण का किंचित् हास स्थायी भाव है।

(३) शोक

'अहित-लाभ हित-हानि तें, कछु जु हुये दुख होत।'

इष्ट के नाश के हृदय में जो व्याकुलता उत्पन्न होती है उसे 'शोक' कहते हैं।

---

१ निकलते हुए चन्द्रमा को जैसे समुद्र देखता है। २ छोड़कर। ३ महादेव। ४ पार्वती का बिंबाफल की भाँति होंठों वाला मुख। ५ शरीर। ६ वस्त्र।

प्रिय के वियोग से जो दुःख होता है वह स्थायी भाव नहीं होता; क्योंकि प्रिय में प्रेम की स्थिति रहती है। इससे वहाँ 'रति' भाव ही स्थायी होता है। वहाँ जो शोक होता है वह संचारी भाव रहता है न कि स्थायी।

उदाहरण—(सवैया)

मोहिं न सोक इतौ तन-प्रान को जायँ रहैं कि लहैं लघुताई।
एहू न सोच घनौ 'पदमाकर' साहिबी जौ पै सुकंठ[1] ही पाई।
सोच यहै यक, बालि बधे पर देहिगो अंगद कों जुवराई।
यों बच बालि-बधू के सुने करुनाकर कों करुना कछु आई॥

यहाँ राम के हृदय में कुछ करुणा होना कहा गया है, यही शोक स्थायी भाव है।

(४) क्रोध

'अपमानादिक तें प्रकट, जो विकार चित होत।'

अपमानादि से हृदय में हर्ष के प्रतिकूल जो मनोविकार उत्पन्न होता है उसे 'क्रोध' कहते हैं।

इस अपमान में घोर अपराधों की गणना करनी चाहिए। जैसे—बड़े लोगों अथवा प्रिय बंधुओं के वध से शत्रु द्वारा किया गया अपमान; साधारण अपराध के कारण जो कड़े वचन कहे जाते हैं वे अमर्ष संचारी भाव के चिह्न हैं; वहाँ क्रोध स्थायी नहीं होता।

उदाहरण—(चौपाई)

गौर सरीर भूति[2] भलि भ्राजा[3]। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस जटा ससि-बदन सोहावा। रिस-बस कछुक अरुन होइ आवा॥

यहाँ परशुराम के नेत्रों में शिव-धनुष-भंग से किंचित् ललाई हो आना क्रोध स्थायी भाव है।

---

१ सुग्रीव। २ भस्म। ३ शोभित थी।

(५) उत्साह

'लखि उद्भट प्रतिभट जु कछु, जगजगात चित चाव ।'

शूरता, दान या दया से उत्पन्न उत्तरोत्तर बढ़ते हुए चित्त के चाव का नाम 'उत्साह' है ।

उदाहरण (चौपाई)

सुनहु भानु-कुल-पंकज-भानू[1] । कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू ॥
जौं तुम्हार अनुसासन[2] पावउँ । कंदुक-इव[3] ब्रह्मांड उठावउँ ॥
काँचे घट जिमि डारउँ फोरी । सकउँ मेरु मूलक[4]-इव तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना । का बापुरो[5] पिनाक[6] पुराना ॥

यहाँ लक्ष्मण के इस कथन में 'उत्साह' स्थायी भाव है । 'जो तुम्हार अनुसासन पावउँ' और 'तव प्रताप महिमा भगवाना' के कारण यह भाव ही है, पूर्ण 'रसत्व' को नहीं प्राप्त हुआ है ।

(६) भय

'विकृत भयंकर के डरन, जो चित कछु अकुलात ।'

अपराध, विकृत शब्द, चेष्टा वा विकृत जीवादि के दर्शन से उत्पन्न व्याकुलता का नाम 'भय' है ।

उदाहरण—(दोहा)

रावन के हैं दस बदन, और बीस हैं बाँह ॥
यह सुनिकै हिय भय कछू, भयो राम-दल माँह ॥

यहाँ रावण के विकृत रूप की बात सुनकर राम की सेना में किंचित् व्याकुलता का उत्पन्न होना 'भय' स्थायी भाव है ।

(७) जुगुप्सा

'सुने-लखे किहिं वस्तु के, घिन उपजत चित माँह ।'

किसी दोषयुक्त वस्तु के देखने, सुनने, स्मरण अथवा स्पर्श

---

१ सूर्यवंश रूपी कमल के सूर्य (राम) । २ आज्ञा । ३ गेंद की तरह । ४ मूली । ५ बेचारा । ६ शिव का धनुष ।

से चित्त में जो किंचित् घृणा का भाव उत्पन्न होता है उसे 'जुगुप्सा' कहते हैं।

'जुगुप्सा' का अर्थ है 'ग्लानि'। किसी घृणित पदार्थ के कारण हृदय में उसके प्रति जो अश्रद्धा उत्पन्न होती है और उससे जो इंद्रियों में संकोच होता है उसे जुगुप्सा कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

सूपनखा को रूप लखि, स्रवत रुधिर[1], बिकराल।
तिय-सुभाव सिय-हिय कछुक, घिन आई तिहि काल॥

यहाँ सीता के हृदय में शूर्पणखा के घृणित शरीर को देखकर जो उसके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हुई है वही जुगुप्सा है। 'कछुक' शब्द से यह भाव ही है परिपक्व होकर 'रस' नहीं हो पाई।

(८) आश्चर्य

'अघटित घटित प्रपंच लखि, जहँ चित विस्मय होत।'

समझ में न आनेवाले पदार्थ के देखने, सुनने, स्पर्श अथवा स्मरण से चित्त में जो किंचित् विस्मय होता है उसे 'आश्चर्य' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

सुर-नर सब सचकित रहे, पारथ को रन देखि।
पै न गिन्यो, यदुनंद अति, करन-पराक्रम पेखि॥

यहाँ 'सुर-नर' सबका चकित हो जाना आश्चर्य स्थायी भाव है। 'पै न गिन्यो यदुनंद अति' से यह भाव ही है, पूर्ण रस नहीं।

(९) निर्वेद या शम

'जहँ बिसेस ज्ञानादि तें, जग सों होय बिराग।'

विशेष ज्ञान के उत्पन्न हो जाने से सांसारिक विषयों से वैराग्य हो जाने को 'निर्वेद' या 'शम' कहते हैं।

---

१ खून।

'निर्वेद' शब्द का अर्थ है 'विशेष ज्ञान'। संसार की वस्तुओं की अनित्यता देखकर हृदय में उन वस्तुओं के प्रति जो निंदा-बुद्धि उत्पन्न होती है उसे निर्वेद कहते हैं। 'शम' का अर्थ 'शांति' है। सांसारिक अशांति से खिन्न होकर जब मन परमार्थ की ओर झुककर शांति-प्राप्ति का इच्छुक हो तो 'शम' होता है।

उदाहरण—(सवैया)

काम-से रूप[1] प्रताप दिनेस से, सोम[2] से सील गनेस-से माने[3]।
हरिचंद-से साँचे, बड़े बिधि[4]-से, मघवा[5]-से महीप विषै-सुखसाने।
सुक[6]-से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस[7] तें अधिकाने।
ऐसे भए तो कहा 'तुलसी' जु पै राजिवलोचन[8] राम न जाने।

'सांसारिक विभूति की चरम सीमा का अधिकारी होकर भी राम-भजन न करने से मनुष्य कुछ नहीं है' इस उपदेश में निर्वेद स्थायी भाव मात्र है।

४—संचारी भाव

'सपदि सदा सनमुख रहैं, थाई भावनि आन।
नौहूँ रस में संचरैं, संचारी ते जानि॥'

जो भाव रस के उपकारक होकर पानी के बुलबुलों और तरंगों की भाँति उठते और विलीन होते रहते हैं उन्हें संचारी या व्यभिचारी भाव कहते हैं।

'संचारी' शब्द का अर्थ है 'फैलनेवाला'। ये भाव स्थायी भाव के सहायक होते हैं और उसको परिपक्व करके रस की अवस्था तक पहुँचाते हैं। किसी जलाशय में जैसे बुलबुले उठते और लुप्त हो जाते हैं

---

१ सौंदर्य। २ चंद्रमा। ३ मान्य। ४ ब्रह्मा। ५ इंद्र। ६ शुकदेव। ७ चिरंजीवी लोमश ऋषि। ८ कमलनेत्र।

अथवा लहरें उठती और नष्ट होती रहती हैं वैसे ही ये भाव भी उठते हैं और रस की थोड़ी सहायता करके लुप्त हो जाते हैं। स्थायी भावों की भाँति ये स्थिर नहीं रहते, रसों में संचरण मात्र करते हैं; इसी से इनका नाम संचारी भाव है। इनकी संख्या बहुत हो सकती है, पर आचार्यों ने केवल तैंतीस संचारियों का वर्णन किया है, वे ये हैं—१ निर्वेद, २ ग्लानि, ३ शंका, ४ असूया, ५ श्रम, ६ मद, ७ धृति, ८ आलस्य, ९ विषाद, १० मति, ११ चिंता, १२ मोह, १३ स्वप्न, १४ विबोध, १५ स्मृति, १६ अमर्ष, १७ गर्व, १८ उत्सुकता, १९ अवहित्था, २० दीनता, २१ हर्ष, २२ व्रीड़ा, २३ उग्रता, २४ निद्रा, २५ व्याधि, २६ मरण, २७ अपस्मार, २८ आवेग, २९ त्रास, ३० उन्माद, ३१ जड़ता, ३२ चपलता और ३३ वितर्क।

यहाँ पर विषय का ज्ञान कराने के लिए कुछ मुख्य मुख्य संचारी भावों का विवरण दिया जाता है—

(१) ग्लानि

'आधि-व्याधि तें अँग सिथिल, काज माँहि नहिं चाव।'

आधि (मानसिक दुःख) और व्याधि (शारीरिक क्लेश) के कारण अंगों का शिथिल होना और कार्य में उत्साह न दिखाना 'ग्लानि' है।

उदाहरण—(मंदाक्रांता)

आवेगों[1] से विपुल विकला[2] शीर्ण काया[3] कृशांगी[4]।
चिंता-दग्धा व्यथित-हृदया शुष्क-ओष्ठा[5] अधीरा ॥
आसीना[6] थी निकट पति के अंबु-नेत्रा[7] यशोदा।
छिन्ना दीना विनत-वदना[8] मोह-मग्ना मलीना ॥

---

१ आकुलता। २ अत्यंत व्याकुल। ३ जर्जर शरीरवाली। ४ दुबले-पतले शरीरवाली। ५ सूखे होंठोंवाली। ६ बैठी हुई। ७ नेत्रों में जल (अश्रु) भरे हुई। ८ मुख नीचा करके।

यहाँ श्रीकृष्ण के चले जाने से यशोदा की दीन दशा में ग्लानि संचारी है।

(२) श्रम

'पथ तें व्यायामादि तें, जहाँ थकावट होइ।'

मार्ग के चलने, व्यायाम करने आदि से जहाँ संतोष-सहित अनिच्छा अर्थात् थकावट हो वहाँ 'श्रम' होता है।

उदाहरण—(सवैया)

पुर तें निकसीं रघुबीर-बधू[1], धरि धीर दए मग में डग[2] द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल[3] की पुट सूखि गए मधुराधर[4] वै।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक[5] पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै[6]।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

यहाँ पर मार्ग चलने से सीता का थक जाना श्रम संचारी है।

सूचना—'ग्लानि' में शरीर की निर्बलता के कारण शिथिलता होती है और श्रम में शरीर के सबल होने पर भी परिश्रम से शरीर में शैथिल्य आता है।

(३) धृति

'साहस ज्ञान सुसंग तें धरै धीरता चित्त।'

विपत्ति में अविचलित बुद्धि का नाम 'धृति' है।

उदाहरण—(कवित्त)

चले चंद-बान[7] घन-बान[8] औ कुहूक-बान[9],
चली हैं कमानैं[10] धूम आसमान छ्वै रह्यो।

---

१ सीता। २ मार्ग में दो कदम रखे, थोड़ी दूर चलीं। ३ ललाट पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। ४ कोमल अधर पुट। ५ कितनी दूर। ६ कहाँ पर। ७ जिन बाणों में अर्द्धचंद्राकार गाँसी लगी रहती है। ८ जो बाण धुएँ से अँधेरा कर देते हैं। ९ ये बाण उजाला और घोर ध्वनि करते हैं। १० तोपें।

चलीं जमदाढ़ैं, बाढ़वारैं[1] तलवारैं जहाँ,
लोह-आँच[2] जेठ को तरनि[3] मानों व्वै रह्यो[4]।
ऐसे समै[5] फौज बिचलाइ[6] छत्रसालसिंह,
अरि के चलाए पायँ[7] बीर रस च्वै रह्यो।
हय[8] चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो॥

यहाँ हय आदि के विचलित हो जाने से हाड़ा छत्रसाल पर जो विपत्ति आई उसमें भी रणभूमि में अटल रहना धृति है।

(४) मोह

'जहँ आपने सरीर को, नेकु न रहै सँभार।'

भय, वियोग आदि से भ्रम उत्पन्न होकर चित्त में व्याकुलता का उत्पन्न होना और उससे वस्तु का यथार्थ ज्ञान न रह जाना 'मोह' है।

उदाहरण—(मंदाक्रांता)

दौड़ा ग्वाला व्रज-नृपति[9] के सामने एक आया।
बोला गायें सकल बन को आपकी हैं न जाती॥
दाँतों से हैं न तृण गहती, हैं न बच्चे पिलाती।
हा हा! मेरी सुरभि[10] सबको आज क्या हो गया है॥

गायों का श्रीकृष्ण-वियोग से तृण न चरना, बच्चों को दूध न पिलाना आदि मोह है।

(५) विबोध

'सोअत तें जहँ जागिबो, भाव परम सुखदानि।'

---

१ एक प्रकार की टेढ़ी तलवार, तेज धारवाली। २ हथियारों की रगड़ की आँच। ३ सूर्य। ४ उदय हो रहा है। ५ समय। ६ विचलित करके। ७ पैर उखाड़ दिए! ८ घोड़ा। ९ नंद। १० गाय।

निद्रा के पश्चात् अथवा अविद्या दूर होने पर चैतन्य-लाभ करना 'विबोध' है।

उदाहरण—(दोहा)

उठे लखन निसि बिगत सुनि, अरुनसिखा[1] धुनि कान।
गुरु तें पहिले जगतपति, जागे राम सुजान॥

यहाँ लक्ष्मण और राम का निद्रा के पश्चात् जागना विबोध है।

(६) स्मृति

'सुमिरन बीती बात को, सुस्मृति भाव कहाय।'

पहले के देखे-सुने हुए पदार्थों का पुनः ज्ञान हो आना 'स्मृति' है।

कुंज! तुम्हारे कुसुमालय में, प्राणनाथ आकर बहुधा।
पान कराते थे सब व्रज को, वेणु बजाकर मधुर सुधा॥
तुम्हें विदित है सुनकर वह रव, ज्यों शिखिनी[2] घन-रव[3] सुनकर।
कौन उपस्थित हो जाती थी, उनके चरणों में सत्वर[4]॥

यहाँ राधिका का श्रीकृष्ण को याद करना स्मृति है।

(७) अमर्ष

'औरै को अभिमान लखि, उर उपजै अभिमान।'

अन्य द्वारा किए गए निंदा, आक्षेप, अनादरयुक्त अभिमान को न सहकर उसको नष्ट करने की इच्छा से युक्त जो अभिमान उत्पन्न होता है उसे 'अमर्ष' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

रे नृपबालक! काल-बस, बोलत तोहिं न सँभार।
धनुही सम त्रिपुरारि-धनु, बिदित सकल संसार॥

यहाँ शिव-धनु-भंग के अपमानयुक्त लक्ष्मण का अभिमान न सहकर उनके प्रति कड़े शब्द कहना अमर्ष है।

---

१ मुर्गा। २ मोरनी। ३ बादल की ध्वनि। ४ शीघ्र।

(८) गर्व

'जहाँ अधिक उपजै हिये, निज गुन-गन को गर्व।'

रूप, धन, वल, विद्यादि के कारण सबकी अपेक्षा अपने को अधिक समझना अथवा सबको अपने से घटकर मानना 'गर्व' है।

उदाहरण—(दोहा)

सूर[1] कवन रावन-सरिस, स्व-कर काटि निज सीस।
हुने[2] अनल[3] महँ बार बहु, हरषि साखि[4] गौरीस[5] ॥

इस दोहे में अपने पराक्रम के कारण रावण का यह कहना कि 'मेरे सदृश वीर कौन है' गर्व संचारी है।

(९ उत्सुकता

'जहाँ हितू के मिलन हित, चाह रहति हिय माहिं।'

किसी कार्य में विलंब को न सहकर उसकी प्राप्ति के लिए संलग्न हो जाने को 'उत्सुकता' कहते हैं।

उदाहरण—(द्रुतविलंबित)

दिन समस्त समाकुल[6] से रहे, सकल मानव गोकुल-ग्राम के।
अब दिनांत विलोकत ही बढ़ी, व्रज-विभूषण-दर्शन-लालसा॥
सुन पड़ा स्वर ज्यों कलवेणु[7] का, सकल ग्राम समुत्सुक हो उठा।
हृदय-यंत्र निनादित हो गया, तुरत ही अनियंत्रित[8] भाव से॥
वयवती युवती बहुबालिका, सकल बालक वृद्ध वयस्क भी।
विवश से निकले निज गेह से, स्वदृग का दुख मोचन के लिए॥

जंगल से आते हुए श्रीकृष्ण को देखने के लिए गोकुलवासियों की तत्परता में उत्सुकता संचारी है।

(१०) हर्ष

'इष्ट वस्तु देखत सुनत, मन प्रसन्न जो होइ।'

---

१ वीर। २ आहुति दी। ३ अग्नि। ४ साक्षी। ५ महादेव।
६ व्याकुल। ७ सुंदर वेणु। ८ बिना रोकटोक।

इष्ट पदार्थ की प्राप्ति से उत्पन्न चित्त की प्रसन्नता को 'हर्ष' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

कनक-थार[1] भरि मंगलन्हि, कर[2] कमलन्ह लिय मातु।
चलीं मुदित परिछन[3] करन, पुलक पल्लवित गातु[4]॥

राम के विवाहित होकर आने से कौसल्या के हृदय में जो प्रसन्नता वर्णित की गई है वही हर्ष संचारी है।

(११) आवेग

'अति डर तें अति नेह तें, उठि चलियत जो वेग।'

अचानक इष्ट अथवा अनिष्ट की प्राप्ति होने से जो चित्त में घबराहट होती है उसे 'आवेग' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

बाँधे बननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, बारीस।
सत्य तोयनिधि, कंपती, उदधि, पयोधि, नदीस॥

यहाँ सेतु-बंध का समाचार सुनकर अनिष्ट की प्राप्ति के कारण रावण का दसो मुखों से भिन्न-भिन्न नाम लेकर एक साथ 'समुद्र बाँध लिया' कहना आवेग संचारी है।

५—अनुभाव

'जिनको निरखत भाव को रस मधि अनुभव होत।'

जिन क्रियाओं अथवा चेष्टाओं से किसी रस में भाव की स्थिति का अनुमान हो उन्हें 'अनुभाव' कहते हैं।

'अनुभाव' शब्द का अर्थ है 'अनुभव करानेवाला'। जो चेष्टाएँ भाव का बोध कराती हैं उन्हें 'अनुभाव' कहते हैं। ये भाव के उठने के अनंतर प्रकट होती हैं।

सभी भावों के अनुभाव भिन्न-भिन्न होते हैं। इनका उल्लेख रस-

---

१ सोने की थाली। २ हाथ। ३ विवाह की एक रस्म। ४ गात्र (शरीर)।

निरूपणवाले प्रकरण में रसों के साथ किया जायगा। कुछ प्रमुख अनुभावों का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

इसके तीन भेद माने गए हैं—(१) सात्त्विक, (२) कायिक और (३) मानसिक

(१) सात्त्विक

'सहजहि अंग-बिकार कहँ, सात्त्विक भाव बखान।'

शरीर के स्वाभाविक अंग-विकार को सात्त्विक भाव कहते हैं।

अंतःकरण की जिस वृत्ति से भाव का प्रकाश होता है उसे 'सत्त्व' कहते हैं। उसी सत्त्व से जो विकार उत्पन्न होते हैं उनका नाम सात्त्विक भाव है।

इसके आठ प्रकार हैं—१ स्तंभ, २ स्वेद, ३ रोमांच, ४ स्वरभंग, ५ कंप, ६ वैवर्ण्य, ७ अश्रु और ८ प्रलय। यहाँ पर दो-एक के उदाहरण दिये जाते हैं।

उदाहरण—

(१) संग्राम-भूमि बिराज रघुपति, अतुलबल कोसलधनी।
स्रमबिंदु मुख राजीव-लोचन[1], अरुन तन स्रोनित-कनी[2]॥
भुज-जुगल फेरत सर-सरासन[3], भालु-कपि चहुँ दिसि बने।
कह 'दास तुलसी' कहि न सक छबि, सेष जेहि आनन[4] घने॥

यहाँ राक्षसों पर क्रोध करने के कारण रामचंद्र के मुख पर पसीने की बूँदें हो आई हैं, यह 'स्वेद' सात्त्विक भाव है।

(२) चकित भीत अचेतन सी बनी। कँप उठी सिगरी जन-मंडली॥
कुटिलता करके सुधि कंस की। प्रबल और हुई उर-वेदना॥

यहाँ कंस के भय से गोकुलवासियों का 'कंप' वर्णित है।

(२) कायिक

'तन की कृत्रिम चेष्टा सो कायिक अनुभाव।'

---

१ लाल कमल से नेत्र। २ खून की बूँदें। ३ धनुष। ४ मुख।

शरीर के अंगों द्वारा जो कृत्रिम चेष्टाएँ की जाती हैं उन्हें 'कायिक अनुभाव' कहते हैं।

उदाहरण—(बरवै)

बेद[1] नाम लै अँगुरिन खंडि अकास[2]।
पठयो सूपनखाहि लषन के पास॥

यहाँ रामजी ने लक्ष्मण को सूपनखा के नाक-कान काट लेने की बात कृत्रिम चेष्टा द्वारा बतलाई है।

(३) मानसिक

'मन-संभव मोदादि कहँ, कहिय मानसिक भाव।'

मन के द्वारा होनेवाले प्रमोदादि मानसिक अनुभाव हैं।

उदाहरण—(दोहा)

सब सिसु एहि मिस प्रेम-बस, परसि मनोहर गात।
तनु पुलकत अति हरष हिय, देखि देखि दोउ भ्रात॥

यहाँ नगर की शोभा दिखाने के बहाने रामचंद्र के शरीर का स्पर्श करके हर्षित होने में मानसिक अनुभाव है।

६—विभाव

जो विशेष रूप से रस को प्रकट करते हैं उन्हें 'विभाव' कहते हैं। इसके दो अंग हैं—(१) आलंबन और (२) उद्दीपन।

(१) आलंबन

'रस उपजै आलंबि जिहि, सो आलंबन होइ।'

जिनका आधार ग्रहण कर मनोविकार उत्पन्न होते हैं उन्हें 'आलंबन' कहते हैं।

प्रत्येक रस के 'आलंबन' भिन्न-भिन्न होते हैं। इनका वर्णन प्रत्येक रस के निरूपण के साथ किया जायगा।

---

१ श्रुति (कान)। २ नाक (नासिका)।

(२) उद्दीपन

रसहिं जगावै दीप ज्यों, उद्दीपन कहि सोइ।

रस को उत्तेजित करनेवाले विभावों को 'उद्दीपन' कहते हैं।

इनके द्वारा आलंबन से उत्पन्न मनोविकार बढ़ता है। प्रत्येक रस के उद्दीपन विभाव भी भिन्न-भिन्न हैं। इनका वर्णन प्रत्येक रस के निरूपण के साथ किया जायगा।

७—रस-निरूपण

रस नौ हैं—१ शृङ्गार, २ हास्य, ३ अद्भुत, ४ वीर, ५ रौद्र, ६ करुण, ७ वीभत्स, ८ भयानक और ९ शांत।

(१) शृङ्गार

स्थायीभाव—इस रस का स्थायी भाव 'रति' है।

आलंबन – नायक और नायिका।

उद्दीपन—वन, उपवन, चंद्र, चाँदनी, पुष्प, शीतल मंद सुगंध समीर, वसंतादि ऋतु, सखा, सखी, दूती आदि।

अनुभाव—प्रेमपूर्वक एक दूसरे को देखना, कटाक्ष करना आदि इसके अनुभाव हैं।

संचारी भाव—कुछ लोग शृङ्गार में सभी संचारियों के सन्निविष्ट हो सकने का समर्थन करते हैं; किंतु अधिकांश लोग संभोग में उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर शेष २९ संचारी ही इस रस के अनुकूल मानते हैं।

उदाहरण—(कवित्त)

दोऊ जने दोऊ को अनूप रूप[1] निरखत,
पावत कहूँ न छवि-सागर को छोर[2] हैं।
'चिंतामनि' केलि की कलानि के बिलासनि[3] सों,
दोऊ जने दोउन के चित्तनि के चोर हैं।

---

१ अनुपम सौंदर्य। २ किनारा। ३ शृङ्गार की अनेक चेष्टाएँ।

दोऊ जने मंद-मुसुकानि-सुधा बरषत,
दोऊ जने छके मोद-मद[1] दुहूँ ओर हैं।
सीताजू के नैन रामचंद्र के चकोर भए,—
राम-नैन सीता-मुख-चंद्र के चकोर हैं॥

यहाँ पर राम और सीता में जो पारस्परिक प्रेम-भाव है वही 'रति' स्थायी भाव है। राम और सीता आलंबन विभाव हैं। एकांत स्थल, सुंदरता आदि उद्दीपन विभाव हैं। मुसकुराना और टकटकी लगाकर एक दूसरे को देखना अनुभाव हैं। हर्ष, उत्सुकता आदि संचारी भाव हैं। अतः यहाँ पूर्ण श्रृङ्गार रस है।

(२) हास्य

स्थायी भाव—हास।

आलंबन—विकृत वचन अथवा विकृत वेशवाला व्यक्ति।

उद्दीपन—अनुपयुक्त वचन और वेश आदि।

अनुभाव—मुख का फैलना, आँखों का मिचना आदि।

संचारी भाव—चपलता, उत्सुकता, निद्रा, आलस्य, अवहित्था आदि।

उदाहरण—(कवित्त)

हँसि-हँसि भजैं देखि दूलह दिगंबर[2] कों,
पाहुनी[3] जे आवैं हिमाचल[4] के उछाह[5] मैं।
कहै 'पदमाकर' सु काहू सों कहै को कहा,
जोई जहाँ देखै सो हँसोई तहाँ राह[6] मैं।
मगन भएई[7] हँसैं नगन महेस ठाढ़े,
और हँसे वेऊ हँसि-हँसि कै उमाह[8] मैं।

---

१ प्रसन्नता रूपी मद से छक गए हैं। २ नग्न महादेव। ३ अतिथि। ४ पार्वती के पिता। ५ उत्सव। ६ रास्ता। ७ आनन्दित होकर। ८ उत्साह, चाव।

सीस पर गंगा हँसैं भुजनि भुजंगा[1] हँसैं,
हास ही को दंगा[2] भयो नंगा के विवाह मैं ॥

यहाँ पर महादेव को नग्न देखकर लोगों का हँसना, हास स्थायी भाव है। महादेवजी आलंबन विभाग हैं। उनका नंगा रूप, विचित्र स्वरूप आदि उद्दीपन-विभाव हैं। लोगों का हँस-हँसकर भागना, लोट-पोट हो जाना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, लोगों के महादेव का स्वरूप देखने के लिए दौड़ने में चपलता, उत्सुकता आदि संचारी भाव हैं। अतः यहाँ पूर्ण हास्य रस है।

(३) करुण

स्थायी भाव—शोक।

आलंबन—मृत बंधु-बांधव अथवा शोचनीय दशा को प्राप्त व्यक्ति।

उद्दीपन—मृतक का दाह, उसकी या उससे संबंध रखनेवाली वस्तुओं का देखना, उसका गुणश्रवण आदि।

अनुभाव—भाग्य की निंदा, पृथ्वी पर गिर पड़ना, रोना, उच्छ्वास लेना आदि।

संचारी भाव—निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिंता आदि।

उदाहरण—(सवैया)

मात को मोह, न द्रोह बिमात[3] को, सोच न तात[4] के गात दहे[5] को।
प्रान को छोभ[6] न, बंधु-बिछोभ[7] न राज को लोभ न मोद रहे को।
एते पै नेक न मानत 'श्रीपति' एते मैं सीय-बियोग सहे को।
तारन-भूमि मैं राम कह्यो, मोहि सोच बिभीषन भूप कहे को ॥

---

१ बाँहों पर सर्प हँसते हैं। २ उपद्रव। ३ (विमाता) सौतेली माता। ४ पिता (दशरथ)। ५ शरीर के जलाने का, उनके स्वर्गवासी हो जाने का। ६ दुःख, खेद। ७ भाई का वियोग।

लक्ष्मण को शक्ति लग जाने पर रामचंद्र विलाप कर रहे हैं। लक्ष्मण के लिए विलाप करने से शोक स्थायी भाव है। लक्ष्मण आलंबन विभाव हैं। लक्ष्मण का चेतना-शून्य शरीर, उनकी वीरता, गुण आदि उद्दीपन विभाव हैं; क्योंकि रामचंद्र कहते हैं कि मैंने विभीषण को 'भूप' कह दिया है। लक्ष्मण के न रहने पर रावण को मारकर इसे सिंहासनारूढ़ करा सकने में मैं अकेला असमर्थ हूँ। रामचंद्र का विलाप करना अनुभाव है। इस शोक में भी विभीषण को राज्यारूढ़ कराने का ध्यान बना रहने से मति, धृति और इनके अतिरिक्त वितर्क, स्मृति, विषाद आदि संचारी भाव हैं।

(४) रौद्र

क्रोध से इंद्रियों की प्रबलता को रौद्र रस कहते हैं।

स्थायी भाव—क्रोध।

आलंबन—अपराध करनेवाला व्यक्ति, शत्रु आदि।

उद्दीपन—शत्रु के किए अपराध, उसकी उमंग आदि।

अनुभाव – आँखों की ललाई, त्योरी चढ़ना, ओंठ चबाना आदि।

संचारी भाव—मद, उग्रता, अमर्ष, स्मृति आदि।

उदाहरण—(सवैया)

बोरौं सबै रघुबंस कुठार की धार मैं बारन[1] बाजि[2] सरत्थहिं[3]।
बान की बायु उड़ायकै लच्छन[4] लच्छ[5] करौं अरिहा समरत्थहिं[6]॥
रामहिं बाम[7] समेत पठै बन, सोक के भार[8] मैं भूँजौं भरत्थहिं[9]।
जौ धनु हाथ लियो रघुनाथ[10] तौ आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं॥

---

१ हाथी। २ घोड़ा। ३ रथ-समेत। ४ लक्ष्मण। ५ (लक्ष्य) निशाना। ६ शत्रुघ्न। ७ स्त्री (सीता)। ८ भाड़, भरसाँई। ९ भरत। १० यदि मुझसे लड़ने के लिए राम हाथ में धनुष लें।

शिव-धनु-भंग सुनकर परशुराम राम के ऊपर क्रुद्ध हो रहे हैं। उनका क्रोध स्थायी भाव है। राम आलंबन विभाव हैं। परशुराम के गुरु शिव का धनुष तोड़कर गुरु का अपमान करना और इतने पर भी शान के साथ राजपुत्री को व्याहकर लेते हुए जाना आदि उद्दीपन विभाव हैं। परशुराम का 'रघुवंश का नाश कर डालूँगा' आदि कहना अनुभाव है। परशुराम के उक्त कथन में गर्व, अमर्ष, उग्रता आदि संचारी भाव हैं। अतः पूर्ण रौद्ररस है।

(५) वीर

स्थायी भाव—उत्साह।

आलंबन—जिस पर अधिकार प्राप्त करना है, रिपु का उत्कर्ष।

उद्दीपन—मारू आदि का बजना, रण-कोलाहल आदि।

अनुभाव—सेना आदि का चलना, हथियारों का चलाना, अंग-स्फुरण, नेत्रों में ललाई, रोमांच आदि।

संचारी भाव—हर्ष, धृति, गर्व, असूया आदि।

उदाहरण—(कवित्त)

डहडहे डंकन के सबद[1] निसंक होत,
बहबही[2] सत्रुन की सेना जोर सरकी[3]।
'हरिकेस' सुभट-घटान[4] की उमंड उत,
चंपति को नंद[5] कोप्यो उमँग समर[6] की।
हाथिन की मंड[7] मारू राग की उमंड[8], त्यों-त्यों
लाली झलकति मुख-छत्रसाल-बर की।
फरकि-फरकि उठैं बाँहैं अस्त्र वाहिबे कौं[9]
करकि-करकि उठैं करी बखतर[10] की॥

---

१ डंकों की घोर ध्वनि। २ खोटी। ३ चली। ४ वीरों का समूह। ५ रैयाराव चंपति के पुत्र (छत्रसाल)। ६ युद्ध। ७ मंडराना। ८ मारूराग की ध्वनि का फैलना। ९ हथियार चलाने के लिए। १० जिरह-बख्तर के बंधन टूट जाते हैं।

यहाँ पर शत्रु की सेना को देखकर छत्रसाल के उमगने में उत्साह स्थायी भाव है। शत्रु आलंबन है। डंकों का शब्द, सेना का चलना, वीरों का तैयार होना, हाथियों का मँड़राना, मारू का वजना आदि उद्दीपन विभाव हैं। युद्ध के लिए उमगना, मुख में ललाई छा जाना, हथियार चलाने के लिए भुजाओं का फड़कना, हर्ष से शरीर के फूल उठने से कवच के वंधनों का टूट जाना आदि अनुभाव हैं। अमर्ष, उत्सुकता, हर्ष, उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

(६) भयानक

स्थायी भाव—भय।

आलंबन—बाघ, चोर, शून्य स्थान, वन, वलवान का अपराध, भयंकर दर्शन आदि।

उद्दीपन—इनकी भयंकर चेष्टाएँ।

अनुभाव—कंप, रोमांच, स्वेद, वैवर्ण्य, घिग्घी वँधना आदि।

संचारी भाव—जुगुप्सा।

उदाहरण—(कवित्त)

रानी अकुलानी सब डाढ़त[1] परानी जाहिं[2],
सकैं न विलोकि वेष केसरी-कसोर[3] को।
मींजि-मींजि हाथ धुनि माथ दसमाथ[4]-तिय,
'तुलसी' तिलौ न भयो बाहिर अगार[5] को।
सब असबाब डारौ[6] मैं न काढ़ो[7] तैं न काढ़ो,
जिय की परी सँभारै सहन-भँडार[8] को।
खीझति मँदोवै[9] सविषाद देखि मेघनाद,
बयो लुनियत,[10] सब याही डाढ़ीजार[11] को॥

---

१ जलते ही। २ भागी जाती हैं। ३ हनुमान। ४ रावण। ५ घर से तिल-भर सामान भी वाहर न हो सका। ६ पड़ा हुआ है। ७ निकाला। ८ खजाना। ९ मंदोदरी। १० इसी का-बोया काट रही हूँ, इसी के कर्मों का फल है कि लंका जली। ११ दहि-जार अर्थात् दुष्ट (वेशऊर)।

लंका-दहन के समय का यह दृश्य है। लंका के जलने पर मंदोदरी आदि के घबड़ाने में भय स्थायी भाव है। हनुमान आलंबन विभाव हैं। हनुमान का विकराल वेश, घर-असबाब आदि का जलना उद्दीपन विभाव है। घबड़ाकर भागना, हाथ मींजना, माथा पीटना, जलते हुए असबाब को देखकर एक दूसरे से उसके बाहर न करने के लिए झगड़ना, खीझना आदि अनुभाव हैं। विषाद, चिंता, स्मृति आदि संचारी भाव हैं। अतः पूर्ण भयानक रस है।

(७) बीभत्स

स्थायी भाव—जुगुप्सा।

आलंबन—दुर्गंधमय मांस, रक्त, अस्थि आदि।

उद्दीपन—रक्त मांस का सड़ना, उसमें कीड़े पड़ना, पक्षियों या पशुओं का इन्हें नोचना, खसोटना आदि।

अनुभाव—मुँह बनाना, थूकना, नाक मूँदना, रोमांच, आँख मींचना आदि।

संचारी भाव—मोह, असूया, अपस्मार, आवेग, व्याधि, मरण आदि।

उदाहरण—(छप्पय)

सिर पै बैठो काग[1], आँखि दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहिं स्यार, अतिहि आनंद उर धारत।
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि-खोदि कै मांस उचारत।
स्वान[2] आँगुरिन काटि-काटिकै खान बिचारत।
बहु चील नोचि लै जात तुच,[3] मोद[4] भढ़यो सबको हियो।
जनु ब्रह्म-भोज जिजमान कोउ, आजु भिखारिन कहँ दियो॥

राजा हरिश्चन्द्र श्मशान में पशु-पक्षियों की यह लीला देख रहे हैं। इसके देखने से उनके मन में जो भाव उठ रहा है वही घृणा स्थायी है।

---

१ कौवा। २ कुत्ता। ३ त्वचा (चमड़ा)। ४ प्रसन्नता।

मुर्दों की हड्डी, मांस, त्वचा आदि आलंबन हैं। कौवों का आँख निकालना, स्यार का जीभ खींचना, गिद्ध का मांस नोचना आदि उद्दीपन विभाव हैं। इन्हें देखकर राजा का इनका वर्णन करने लगना अनुभाव है। मोह, स्मृति आदि संचारी भाव हैं। अतः पूर्ण वीभत्स रस है।

(८) अद्भुत

स्थायी भाव—आश्चर्य या विस्मय।

आलंबन—अलौकिक अथवा आश्चर्योत्पादक वस्तु या कार्य।

उद्दीपन—उसकी विचित्रता या उसके गुणों की महिमा।

अनुभाव—रोमांच, कंप, गद्‌गद वाणी, स्तंभ, स्वेद, संभ्रम आदि।

संचारी भाव—वितर्क, भ्रांति, हर्ष, मोह आदि।

उदाहरण—(कवित्त)

गोपी-ग्वाल-माली[1] जुरे आपुस मैं कहैं आली!
कोऊ जसुदा[2] के अवतर्‌यो इन्द्रजाली[3] है।
कहै 'पद्‌माकर' करै को यौं उताली[4] जापै,
रहन न पावै कहूँ एकौ फन खाली है।
देखै देवताली[5], भई बिधि[6] के खुसाली[7], कूदि
किलकति काली हेरि हँसत कपाली[8] है।
जनम को चाली[9] एरी अद्भुत है ख्याली[10] आजु,
काली[11] की फनाली[12] पै नचत बनमाली[13] है॥

कालिय नाग को नाथकर श्रीकृष्ण के निकलने पर ब्रजवासी इस प्रकार परस्पर कह रहे हैं। वे कृष्ण का यह कृत्य देखकर जो चकित हो गए हैं उसमें आश्चर्य स्थायी भाव है। श्रीकृष्ण का कालिय नाग को नाथकर यमुना से

---

१ समूह। २ यशोदा। ३ जादूगर उत्पन्न हुआ है। ४ उतावली, शीघ्रता। ५ देवताओं का समूह। ६ ब्रह्मा। ७ प्रसन्नता। ८ महादेव। ९ चालबाज। १० खेलवाड़ी। ११ कालिय नाग। १२ फणों का समूह। १३ कृष्ण।

निकलना आलंवन है। कृष्ण का कालिय नाग के फण पर उछल-उछलकर नाचना आदि उद्दीपन विभाव हैं। गोपी-ग्वाल का दौड़-दौड़कर एकत्र होना, इस कृत्य के संबंध में अनेक प्रकार की बातें करना, देवताओं आदि का प्रसन्न होना अनुभाव हैं। कृष्ण की जन्म-भर की चालों के स्मरण से स्मृति, देखने के लिए दौड़ने से उत्सुकता, हर्ष, वितर्क आदि संचारी भाव हैं। अतः पूण अद्भुत रस है।

(६) शांत

स्थायी भाव—निर्वेद अथवा शम।

आलंबन—संसार की अनित्यता का ज्ञान, परमात्मचिंतन आदि।

उद्दीपन—सत्संग, पुण्याश्रम, तीर्थस्थान, एकांत एवं रमणीय वन योगक्रिया आदि।

अनुभाव—रोमांच आदि।

संचारी भाव—धृति, मति, निर्वेद, हर्ष, स्मृति आदि।

उदाहरण—(कबित्त)

रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि[1] हौं।
जानत जहान, मन मेरेहू गुमान बड़ो।
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं।
पाँच[2] की प्रतीति न भरोसो मोंहि आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबैहिं परि[3] जानिहौं।
गढ़ि-गुढ़ि छोलि-छालि कुंद की-सी भाई बातैं,[4]
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं॥

यहाँ संसार की अनित्यता का ज्ञान ही आलंवन है। सत्संग आदि उद्दीपन हैं। राम का नाम जपना, भीतर-बाहर से एक सा हो जाने की प्रार्थना करना आदि अनुभाव हैं। मति, धृति, वितर्क आदि संचारी भाव हैं।

---

१ मर्यादा। २ पंचदेव। ३ निश्चित रूप से। ४ खराद पर चढ़ाई हुई, साफ-सुथरी।

सूचना—इन नौ रसों के अतिरिक्त कुछ आचार्यों ने 'वत्सल' नामक एक और रस माना है। कुछ आचार्य इसे रस नहीं मानते। यह रस है या नहीं, इस विषय पर अधिक कुछ न कहकर केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि हिंदी-साहित्याकाश के सूर्य-चंद्र सूरदास एवं तुलसी-दास ने इस रस को अपनाया है और इसका बड़ा ही सुंदर हृदयग्राही वर्णन किया है। अतएव इस रस का भी परिचय दिया जाता है।

अपने छोटों—भाई-बहिन, पुत्र-कन्या आदि—पर जो प्रेम किया जाता है उसे 'वात्सल्य' कहते हैं। यही वात्सल्य इस रस का स्थायी भाव है। भाई-बहिन, पुत्र-कन्या आदि के आधार पर इस रस की स्थिति पाई जाती है, अतः ये आलंबन विभाव हैं। आलंबन की मनोहर चेष्टा बालकीला आदि एवं उनका सौंदर्य देखने, उनकी विद्या, गुण, तोतली वाणी आदि सुनने से यह प्रेम और भी बढ़ता है; ये उद्दीपन विभाव हैं। स्नेह से उनको गोद में लेना, आलिंगन करना, सिर सूँघना, सिर पर हाथ फेरना आदि चेष्टाएँ अनुभाव हैं। हर्ष, गर्व आदि इस रस के संचारी भाव हैं।

उदाहरण—(सवैया)

कबहूँ ससि माँगत आरि[1] करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइकै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि[2] अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा 'तुलसी' मन-मंदिर में बिहरैं॥

यहाँ पर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को देख उनपर जो प्रेम-भाव उत्पन्न हो रहा है, वही वात्सल्य स्थायी भाव है। चारों बालक आलंबन हैं। चंद्र के माँगने में हठ, प्रतिबिंब देखकर डरना आदि उद्दीपन विभाव है। माताओं का पुलकित होना अनुभाव है। हर्ष आदि संचारी भाव हैं।

---

१ हठ। २ वास्ते।

तृतीय प्रकाश

अलंकार

'अलंकार' शब्द का अर्थ है 'गहना'। जिस प्रकार किसी व्यक्ति को गहना पहना देने से वह और सुंदर ज्ञात होने लगता है उसी प्रकार अलंकारों से विभूषित काव्य भी सुंदर ज्ञात होने लगता है।

काव्य की शोभा करनेवाले धर्मों को अलंकार कहते हैं।❀

'अलंकार' वस्तुतः बोलने अथवा लिखने की एक प्रकार की शैली है। बोलचाल में किसी बात को श्रोता या पाठक के मन में भली भाँति बैठा देने के लिए बात कुछ बनाकर कही जाती है। इस प्रकार बात के सजाने में जो चमत्कार आ जाता है उसे रीति-ग्रंथों में 'अलंकार' के नाम से पुकारते हैं। यह चमत्कार बहुत स्पष्ट होना चाहिए, जिससे पाठक या श्रोता उसे शीघ्रता से समझ लें। यदि इसमें गूढ़ता रहेगी तो यह दूसरी ही वस्तु हो जायगा, जिसे साहित्य-शास्त्र में 'व्यंग्य' कहते हैं।

सीधी-सादी बात कहने से सुनने में भी उतनी अच्छी नहीं जान पड़ती। इस कारण समाज में और विशेष कर काव्यक्षेत्र में उसे कुछ सजाकर ही कहना पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि कहना हो कि 'राम का मुख सुंदर है' तो इसके स्थान पर 'राम का मुख चंद्रमा सा सुंदर है' कहने से वाक्य रोचक प्रतीत होता है।

वाक्य में 'शब्द' और उसका 'अर्थ' ही मुख्य हैं। इस विचार से अलंकारों के दो विभाग हैं—(१) शब्दालंकार और (२) अर्थालंकार।

❀ काव्यशोभाकरान्धर्मानलङ्कारान्प्रचक्षते—दंडी।

शब्दालंकार

जहाँ शब्दों के कारण चमत्कार हो वहाँ शब्दालंकार होता है।

शब्दालंकारों में केवल शब्दगत चमत्कार होता है, अर्थगत नहीं। इसलिए जिन शब्दों के कारण कविता में चमत्कार होता है उनके स्थान पर उसी अर्थ के दूसरे शब्द रख देने से वह चमत्कार नष्ट हो जाता है। अतः शब्दालंकारों के चमत्कारोत्पादक शब्द पर्यायवाची शब्दों से वदले नहीं जा सकते। यही कारण है कि इन्हें 'शब्दालंकार' कहते हैं, क्योंकि ऐसे अलंकार शब्दों पर ही आश्रित हैं, उनके अर्थ पर नहीं।

यहाँ पर केवल चार मुख्य शब्दालंकारों का वर्णन किया जाता है—(१) अनुप्रास, (२) यमक, (३) वक्रोक्ति और (४) श्लेष।

(१) अनुप्रास

'अच्छर सम बरु स्वर असम, अनुप्रासऽलंकार।'

जहाँ अक्षरों की समानता दिखाई जाय, उनके स्वर मिलें या न मिलें, वहाँ अनुप्रासालंकार होता है।

'अनुप्रास शब्द का अर्थ है—'अनु' अर्थात् 'वारंवार' और 'प्रास' अर्थात् 'रखना'। जहाँ वार-बार वही वर्ण रखा जाय वहाँ अनुप्रासालंकार होता है 'क' से लेकर 'ह' तक व्यंजन और 'अ' से लेकर 'अः' तक स्वर कहलाते हैं। इन सबको अक्षर या वर्ण कहते हैं। ऊपर लक्षण में जो 'स्वर' शब्द लिखा गया है उसका तात्पर्य व्यंजनों में लगनेवाली 'मात्राओं' से है। जैसे—'का' में 'ा' (आकार), 'कि' में 'ि' (इकार) और 'कु' में 'ु' (उकार) की मात्राएँ हैं।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

वंदउँ गुरु-पद-पदुम[1]-परागा[2]।
सुरुचि[3] सुबास[4] सरस[5] अनुरागा[6]॥

---

१ पद्म, कमल। २ धूलि। ३ सुंदर चमक। ४ सुगंध। ५ फैलता है। ६ प्रेम।

यहाँ 'पद', 'पदुम' और 'पराग' शब्दों के आदि में 'प' अक्षर की समानता है और 'सुरुचि', 'सुवास' एवं 'सरस' शब्दों के आदि में 'स' अक्षर की समानता है। 'पद-पदुम-परागा' में 'प' का स्वर (मात्रा) तीनों स्थानों में एक है, पर 'सुरुचि, सुवास, सरस' में दो शब्दों में तो 'सु' है पर तीसरे में 'स'। इसलिए स्वर नहीं मिलता। फिर भी यहाँ अनुप्रासालंकार माना जायगा।

अनुप्रासालंकार के तीन भेद किए गए हैं—(१) छेकानुप्रास, (२) वृत्त्यनुप्रास और (३) लाटानुप्रास।

(१) छेकानुप्रास

'वर्न अनेक कि एक की, जहँ सरि एकै बार।'

जहाँ एक वर्ण की अथवा अनेक वर्णों की समानता केवल एक बार हो वहाँ छेकानुप्रास होता है।

'छेक' शब्द का अर्थ है 'चतुर'। इस अनुप्रास का प्रयोग चतुर लोग अपनी चातुरी दिखाने के लिए करते थे, इसीसे इसका नाम 'छेकानुप्रास' है।

उदाहरण—(दोहा)

राधा के बर[1] बैन[2] सुनि, चीनी चकित सुभाय[3]।
दाख[4] दुखी मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय॥

यहाँ 'बर बैन' में 'ब' की, 'चीनी चकित' में 'च' की, 'मिसरी मुरी' में 'म' की और 'सुधा सकुचाय' में 'स' की—केवल एक ही अक्षर की आवृत्ति है। पर 'दाख दुखी' में 'द ख' दो अक्षरों की समानता दिखाई गई है।

सूचना—अनुप्रास केवल शब्दों के आदि में आए हुए अक्षरों से ही नहीं होता, वरन् अंत में आए हुए अक्षरों से भी होता है। ऊपर दिए हुए उदाहरण में 'बैन सुनि' में 'न' का अनुप्रास है और 'मिसरी मुरी' में 'म'

---

१ श्रेष्ठ। २ वचन। ३ स्वभाव से ही। ४ मुनक्का।

के अतिरिक्त 'र' का भी अनुप्रास है; पर स्मरण रखना चाहिए कि अनुप्रास एक सिलसिले से हो तभी चमत्कार माना जायगा। यदि शब्दों के आदि के अक्षर मिलते हैं तो आद्य अक्षर ही मिलें और अंत के अक्षर मिलते हैं तो वे ही क्रम से मिलें। किसी शब्द के आदि में जो अक्षर है वही अक्षर दूसरे शब्द के अंत में हो तो अनुप्रास न होगा। यथा—'रस-सर' में 'र' या 'स' किसी अक्षर का अनुप्रास नहीं माना जायगा; पर यदि 'रस-रास' होगा तो 'र' और 'स' का अनुप्रास होगा।

(२) वृत्ति-अनुप्रास

'बर्न अनेक कि एक की, जहँ सरि कैयो बार।'

जहाँ एक या अनेक वर्णों की समानता कई वार हो वहाँ वृत्ति अनुप्रास होता है।

इसका नाम 'वृत्ति-अनुप्रास' इसलिए है कि इसमें अक्षर वीर आदि रसों का विचार करके उनकी वृत्ति के अनुकूल रखे जाते हैं। जैसे वीर रस के लिए कुछ कठोर और टेढ़े-मेढ़े शब्दों की आवश्यकता होती है और शृङ्गार या शांत रस के लिए कोमल और सीधे शब्दों की। इसीलिए इस अनुप्रास के तीन विभाग किए गए हैं।

रस के अनुकूल कुछ बँधे हुए वर्णों का व्यवहार करने को 'वृत्ति' कहते हैं। तीन प्रधान रसों—शृङ्गार, वीर और शांत के अनुकूल यह तीन भागों में बाँटी गई है।

(१) उपनागरिका वृत्ति—यह वृत्ति शृङ्गार, हास्य और करुण रसों में प्रयुक्त होती है। इस वृत्ति में टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ) को छोड़कर शेष मधुर वर्ण और सानुनासिक वर्ण प्रयुक्त होते हैं।

(२) परुषा वृत्ति—यह वीर, रौद्र और भयानक रसों में उपयोगी होती है। इसमें टवर्ग, द्वित्व वर्ण (क्क, च्च, ट्ट, त्त, प्प आदि) रेफ और श, ष आदि कठोर वर्ण, लंबे-लंबे समास और संयुक्त वर्ण (क्ख, च्छ, ट्ठ, त्थ आदि) अधिक रखे जाते हैं।

(३) कोमला वृत्ति—यह शांत, अद्भुत और वीभत्स रसों में काम आती है। इसमें य, र, ल, व, स, ह आदि कोमल अक्षर, छोटे-छोटे समास अथवा बिना समास के शब्द काम में लाए जाते हैं।

१—उपनागरिका वृत्ति

उदाहरण—(अर्द्धाली)

धरम-धुरीन[1], धीर नय-नागर[2]।
सत्य-सनेह-सील-सुख-सागर ॥

यहाँ पर 'ध' और 'स' अक्षर कई बार प्रयुक्त हुए हैं, इससे वृत्त्यनुप्रास है। ये दोनों वर्ण तथा इनके अतिरिक्त और वर्णों में से अधिक वर्ण मधुर हैं, इससे यह उपनागरिका वृत्ति है।

२—परुषा वृत्ति

उदाहरण—(दोहा)

बक्त्र[3] बक्र[4] करि पुच्छ[5] करि, रुष्ट[6] रिच्छ[7] कपि-गुच्छ[8]।
सुभट ठट्ट[9] घन घट्ट[10] सम, मर्दहिं रच्छन तुच्छ[11] ॥

यहाँ संयुक्त वर्ण (क्र, च्छ) और द्वित्व वर्ण (ट्ट) कई वार प्रयुक्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त शेष अक्षरों में भी रेफ (मर्दहि) और कर्कश शब्द की अधिकता है, इससे यह परुषा वृत्ति है।

३—कोमला वृत्ति

स्यामल-गौर[12] किसोर[13] वर, सुंदर सुषमा-ऐन[14]।

यहाँ 'र' और 'स' अक्षर कई बार प्रयुक्त हुए हैं, इसलिए कोमला वृत्ति है।

---

१ धर्म की धुरा धारण करनेवाले, धर्मिष्ठ। २ नीति में चतुर, नीतिज्ञ। ३ वक्त्र (मुख)। ४ टेढ़ा। ५ पूँछ। ६ रुष्ट (क्रुद्ध)। ७ ऋक्ष (भालू)। ८ वंदरों का समूह। ९ वीरों का समूह। १० वादल की घटा। ११ तुच्छ राक्षसों का मर्दन करते हैं। १२ साँवले और गोरे। १३ बारह वर्ष से ऊपर की वयवाले (राम-लक्ष्मण)। १४ सुंदरता के घर (अत्यंत सुंदर)।

सूचना—इन तीनों वृत्तियों को देश के विचार से क्रमशः वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली भी कहते हैं।

(३) लाटानुप्रास

'सब्द अर्थ एकै रहै, अन्वय करतहि भेद।'

जहाँ शब्दों या वाक्यों की आवृत्ति हो और उनका अर्थ भी वही रहे, केवल अन्वय करने से तात्पर्य वदल जाय, वहाँ लाटानुप्रास होता है।

छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास वस्तुतः वर्णों के अनुप्रास हैं और लाटानुप्रास शब्दों का अनुप्रास है। इसका यह नाम पड़ने का कारण यह है कि इसे 'लाट' (गुजरात) देश के लोगों ने निकाला है।

उदाहरण—(दोहा)

(१) तीरथ-व्रत-साधन कहा, जो निसदिन हरि-गान।
तीरथ-व्रत-साधन कहा, बिन निसदिन हरि-गान॥

यहाँ पर पूर्वार्द्ध का अन्वय 'जो' शब्द के साथ है और उत्तरार्द्ध का अन्वय 'बिन' शब्द के साथ। शेष शब्द दोनों पंक्तियों में एक ही हैं और उनका अर्थ भी एक ही है; किंतु भिन्न शब्दों के साथ अन्वय होने के कारण दोनों के तात्पर्य भिन्न-भिन्न हैं। पूर्वार्द्ध का तात्पर्य है—'यदि रातो-दिन ईश्वर का भजन किया जाता है तो तीर्थ-व्रतादि की साधना करने की आवश्यकता नहीं।' और उत्तरार्द्ध का तात्पर्य है—'बिना रातो-दिन ईश्वर का भजन किए यदि तीर्थ एवं व्रतादि की साधना की जाय तो वह व्यर्थ है।'

ऊपर वाक्य (कई शब्दों) की आवृत्ति का उदाहरण दिया गया है। अब एक शब्द की आवृत्ति का उदाहरण दिया जाता है—

(२) नंद-चख[१]-चंद चंद-वंस-नभ[२]-चंद,
ब्रज-चंद-मुख-चंद पै अनेक चंद वारौं[३] मैं।

यहाँ 'चंद' शब्द की आवृत्ति है। सभी स्थानों में इसका एक ही

१ आँख। २ आकाश। ३ न्योछावर करता हूँ।

अर्थ है भिन्न-भि शब्दों के साथ अन्वय होने से तात्पर्य बदल गया है।

सूचना—छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास को अँगरेजी में 'एलिटरेशन (Alliteration) कहते हैं।

(२) यमक

'वहै सव्द फिरि-फिरि परै, अर्थ औरई और।'

जहाँ निरर्थक अथवा सार्थक स्वर-व्यंजनों के समूह की आवृत्ति हो वहाँ यमकालंकार होता है।

'यमक' शब्द का अर्थ है 'दो'। इसलिए इस अलंकार में एक ही आकारवाले शब्दों का बार बार प्रयोग होता है।

(१) मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ विदेह विदेह विसेखी॥

यहाँ 'विदेह' शब्द दो बार आया है। पहले का अर्थ 'राजा जनक' और दूसरे का अर्थ 'विना शरीरवाला' है। राजा जनक राम को देखकर अपने तन-बदन की सुध-बुध भूल गए थे। अतः यहाँ यमकालंकार है।

(२) चतुर है चतुरानन[1]-सा वही,
सुभग भाग्य-विभूषित भाल[2] है।
मन! जिसे मन में पर-काव्य[3] की,
रुचिरता[4] चिरताप-करी[5] न हो॥

यहाँ चतुर्थ चरण में 'चिरता' का यमक है। इस 'चिरता' का दोनों स्थानों पर कोई अर्थ नहीं होता, इससे यह निरर्थक यमक का उदाहरण है। पहला उदाहरण सार्थक यमक का है; क्योंकि वहाँ शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं।

सूचना—लोगों ने यमक के बहुत से भेद कर डाले हैं, पर वे सब इन्हीं सार्थक और निरर्थक के हेर-फेर से बनते हैं। उनका विस्तार यहाँ

---

१ ब्रह्मा। २ ललाट। ३ दूसरे की कविता। ४ सुंदरता। ५ बहुत दिनों तक संताप करनेवाली।

अनावश्यक है। कभी-कभी पूरे वाक्य का भी यमक होता है। इसके अतिरिक्त छन्दों के चरण के अंत और आदि में एक यमक होता है, जो प्राचीन कवियों में बहुत प्रचलित था। इसका नाम 'मुक्त-पद-ग्राह्य' या 'सिंहावलोकन' है। 'मुक्त-पद-ग्राह्य' नाम इसलिए है कि पिछले चरण के अंत में जो 'पद' (शब्द) छोड़ा जाता है वह अगले चरण के आदि में ग्रहण कर लिया जाता है। 'सिंहावलोकन' इसलिए कहते हैं कि सिंह जैसे दाहिने-बाएँ देखता चलता है वैसे ही यह यमक भी दाहिने-बाएँ पड़ता है। इसका पद्यबद्ध लक्षण यों है—'चरण अंत अरु आदि में यमक कुंडलित होय'

(१) वाक्यावृत्ति

उदाहरण—(कवित्त)

ऊँचे घोर मंदर[1] के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर[2] के अंदर रहाती हैं।
कंद-मूल भोग करैं[3] कंद-मूल[4] भोग करैं,
तीन बेर[5] खातीं ते वै तीन बेर[6] खाती हैं।
भूखन सिथिल अंग[7] भूखन सिथिल अंग[8],
बिजन डोलाती[9] ते वै बिजन डोलाती[10] हैं।
'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रास[11]
नगन जड़ाती[12] ते वै नगन जड़ाती[13] हैं॥

---

१ ऊँचे और विशाल मंदिर (राजमहल)। २ ऊँचे और भयावने पर्वत। ३ बढ़िया मिठाई खाती थीं। ४ कंद और जड़ें। ५ तीन बार (मर्तबा)। ६ तीन बेर (फल)। ७ आभूषणों (के बोझ) से जिनके अंग शिथिल (सुस्त) रहते थे। ८ भूखों से शरीर शिथिल है। ९ पंखा झलती थीं। १० (बिना मनुष्य के) अकेली घूमती हैं। ११ डर। १२ (गहनों में) रत्न जड़वाती थीं। १३ नंगी जाड़ा खाती हैं।

(२) सिंहावलोकन

उदाहरण—(सवैया)

लाल है भाल सिँदूरभरो मुख-सिंधुर[1] चारु[2] औ बाँह बिसाल है[3]।
साल[4] है सत्रुन को 'कबि देव' सुसोभित सोमकला[5] धरे भाल[6] है।
भाल है दीपत सूरज कोटि सो काटत कोटि कुसंकट-जाल[7] है।
जाल[8] है बुद्धि-बिवेकन को यह पारवती को लड़ायतो[9] लाल[10] है॥

इस सवैया के प्रथम चरणांत में 'विसाल है' है और उसके साथ जो 'साल है' वही अगले चरण के आदि में ग्रहण किया गया है। दोनों में अर्थ अलग-अलग हैं। इसी प्रकार शेष चरणों में भी समझ लेना चाहिए।

सूचना—'लाटानुप्रास' में जिन शब्दों की आवृत्ति होती है उनका अर्थ एक ही होता है, पर 'यमक' में अर्थ भिन्न-भिन्न होता है। यमक को अँगरेज़ी में 'पन' (Pun) कहते हैं।

(३) वक्रोक्ति

'होय स्लेष सों काकु सों, कल्पित औरै अर्थ।'

जहाँ श्लेष[11] अथवा काकु[12] से कहनेवाले के कथन का सुननेवाला दूसरा ही अर्थ करे वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।

'वक्रोक्ति' शब्द का अर्थ है—(वक्र + उक्ति)—उक्ति (कथन) को वक्र (टेढ़ा) करना। इस अलंकार में श्रोता वक्ता के कथन को टेढ़ा-मेढ़ा करके उसका दूसरा ही अर्थ ठहराता है।

इसके दो भेद होते हैं—(१) श्लेष-वक्रोक्ति और (२) काकु-वक्रोक्ति।

---

१ हाथी के ऐसा मुख। २ सुंदर। ३ लंबी। ४ शल्य (दुःखद)। ५ चंद्रमा की कला (द्वितीया का चंद्रमा)। ६ शोभा पाता है। ७ जंजाल, झगड़ा-बखेड़ा। ८ समूह। ९ प्यारा। १० पुत्र। ११ दो अर्थवाले शब्दों के द्वारा। १२ कंठध्वनि को बदलकर।

(१) श्लेष-वक्रोक्ति

जहाँ कहनेवाले ने जो बात जिस अभिप्राय से कही हो सुननेवाला श्लेष से उसका दूसरा अर्थ करे वहाँ श्लेष-वक्रोक्ति होती है।

इसके भी दो भेद किए गए हैं—(१) भंगपद और (२) अभंगपद।

१—भंगपद

इसमें वक्ता के कहे हुए शब्दों के टुकड़े करके अन्यार्थ किया जाता है। इसी से इसे 'भंगपद' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

मान तजो गहि सुमति बर, पुनि-पुनि होति न देह।
मानत जोगी जोग को, हम नहि करत सनेह॥

कोई अपने मित्र से कहता है—'हे वर (श्रेष्ठ) सुमति गहि (सुन्दर बुद्धि धारण करके) मान तजो (रूठना छोड़ दो)'। इन्हीं शब्दों को सुननेवाला मित्र—"मानत जोगहि सुमति-वर; (सुन्दर मतिवाले लोग योग को मानते हैं)" भंगपद करके उत्तर देता है कि "योगी लोग योग को मानते हैं, हम योग (प्रेम) नहीं करेंगे (रूठे ही रहेंगे)।"

२—अभंगपद

इसमें कहे हुए शब्दों का खंड नहीं होता। पूरे पद का दूसरा अर्थ कल्पित किया जाता है।

उदाहरण—(कबित्त)

साहितनै[1] तेरे वैर वैरिन को कौतुक[2] सो,
बूझत फिरत कहौ काहे रहे तचि हौ[3]।

---

१ शाहजी के पुत्र, शिवाजी। २ तमाशा। ३ दुःखी हो रहे हो।

"सरजा[1] के डर हम आए इतै भाजि[2]" तौऽब,
सिंह सों डराय याहू ठौर तें उकचि[3] हौ।
'भूषन' भनत वै कहैं कि हम सिव कहैं।
तुम चतुराई सों कहत बात रचि हौ।
सिव जापै रूठैं तौ निपट कठिनाई,
तुम बैर त्रिपुरारि[4] के त्रिलोक मैं न बचिहौ॥

इस कबित्त में शिवाजी के वैरी 'सरजा' (शरजाह, एक उपाधि) और 'शिव' (शिवाजी) से डरने की बात कहते हैं, जिनका अर्थ सुननेवाला 'सिंह' और 'महादेव' करके उन्हें उत्तर देता है।

(२) काकु-वक्रोक्ति

'जहाँ कंठधुनि भिन्न तें, अर्थ जुदो करि देय।'

जहाँ वक्ता के कहे हुए वाक्य का श्रोता कंठ-ध्वनि-विकार से भिन्न अर्थ कर दे वहाँ काकु-वक्रोक्ति होती है। 'काकु' शब्द का अर्थ 'कंठ की ध्वनि का विकार' है।

उदाहरण—(दोहा)

क्यों ह्वै रह्यौ निरास[5], कहि कहि 'नहिं हरिहैं बिपति।'
राखिय दृढ़ बिस्वास, हरि[6] ह्वै नहिं हरिहैं बिपति ?

कोई विपत्ति का मारा कहता है कि भगवान् 'नहिं हरिहैं विपति' (दुःख को नहीं दूर करेंगे)। दूसरा व्यक्ति इन्हीं शब्दों का केवल कंठध्वनि से दूसरा अर्थ कर देता है—'नहिं हरिहैं विपति ?' (क्या विपत्ति नहीं हरण करेंगे ? अर्थात् अवश्य हरण करेंगे)।

सूचना—अपनी उक्ति के वक्र करने में काकु-वक्रोक्ति नहीं होगी। दूसरे द्वारा उसका भिन्नार्थ किया जाना आवश्यक है। अपनी उक्ति के

---

१ शरजाह (एक उपाधि) और शरजः (सिंह)। २ भागकर। ३ उखड़ जाओगे, भागोगे। ४ महादेव। ५ हताश। ६ भगवान्।

वक्र करने में 'ध्वनि' होती है, जो अलंकारों से भिन्न है। 'वक्रोक्ति' को अगरेजी में 'क्रुकेड स्पीच' (Crooked Speech) कहते हैं।

(४) श्लेष

'दोय तीन अरु भाँति बहु, आवत जामें अर्थ।'

जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिनके एक से अधिक अर्थ होते हों वहाँ श्लेषालंकार होता है।

'श्लेष' शब्द का अर्थ है 'चिपका हुआ'। इस अलंकार में जिन शब्दों का प्रयोग होता है उनमें कई अर्थ चिपके रहते हैं।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

(१) रावन-सिर-सरोज-बनचारी[1]।
चलि रघुबीर-सिलीमुख-धारी[2]।

यहाँ पर 'शिलीमुख' के दो अर्थ हैं—बाण और भौंरा। क्योंकि 'रावण' के सिर-रूपी कमल-वन में शिलीमुख की सेना प्रवेश कर रही है' में केवल बाण अर्थ से खूबी नहीं आती, इसीसे दो अर्थवाला 'शिलीमुख' शब्द रखा गया है।

(२) बहुरि सक्र[3] सम बिनवउँ तेही।
संतत[4] सुरानीक हित जेही।

यहाँ 'सुरानीक' पद के दो अर्थ हैं—(१) सुर + अनीक = सेना अर्थात् देवताओं की सेना और (२) सुरा = शराब + नीक = बढ़िया अर्थात् शराब अच्छी है। पहला अर्थ इंद्र के पक्ष में लगता है, क्योंकि उसे देवों की सेना प्रिय है और दूसरा अर्थ दुष्टों पर घटता है, जो शराब पीते हैं।

सूचना—श्लेष को अँगरेजी में 'पैरोनोमेसिया' (Paronomasia) कहते हैं।

---

१ सिर-रूपी कमल-वन में घूमनेवाली। २ सेना। ३ इंद्र। ४ सदा।

(२) अर्थालंकार

जहाँ अर्थ में चमत्कार पाया जाय वहाँ अर्थालंकार होता है।

अर्थालंकार में अर्थ के कारण चमत्कार होता है। जिन शब्दों के अर्थ से कोई चमत्कार उत्पन्न हो रहा है उन्हें पर्यायवाची शब्दों से बदल भी सकते हैं और ऐसा करने पर भी वह चमत्कार बना रहेगा।

अर्थालंकारों की संख्या सौ से भी ऊपर है, पर उनमें से मुख्य-मुख्य अलंकारों का ही यहाँ वर्णन किया जाता है।

(१) उपमा

'जहँ सादृस तें होत है, सोभा को परकास।'

जहाँ किसी प्रकार की समानता के कारण एक वस्तु दूसरी वस्तु के समान कही जाय वहाँ उपमालंकार होता है।

'उपमा' शब्द का अर्थ है—'उप' अर्थात् समीप और 'मा' अर्थात् निर्णय करना (तौलना)। इस अलंकार में दो पदार्थ एक स्थान में रखकर जाँचे जाते हैं और समानता के कारण एक से कहे जाते हैं। इसी से इसे 'उपमा' कहते हैं।

उपमा में चार अंग होते हैं—१ उपमेय, २ उपमान, ३ साधारण-धर्म और ४ वाचक।

उपमेय—जिस वस्तु का वर्णन किया जाता है उसे उपमेय कहते हैं।

उपमान—जिस वस्तु की समता किसी वस्तु के साथ दी जाती है उसे उपमान कहते हैं।

साधारण-धर्म—जिस विशेषता के कारण उपमेय और उपमान में समता दिखाई जाती है उसे साधारण-धर्म कहते हैं।

वाचक—जिस शब्द के द्वारा उपमेय और उपमान की समानता सूचित होती है वह वाचक कहलाता है। जैसे—सा, इव, तुल्य, लौं, सदृश, सम, ज्यों, जैसे, जिमि, समान, इमि आदि।

उदाहरण—(चौपाई)

करि-कर सरिस सुभग भुजदंडा ।

यहाँ 'भुजदंडों' (बाहुओं) का वर्णन किया जा रहा है, अतः यह 'उपमेय' है। 'करि-कर' (हाथी की सूँड़) से उपमेय की समता दिखाई जा रही है, अतः यह 'उपमान' है। 'सुभग' (सुंदर) के कारण इन दोनों में समानता कही गई है, इससे यह 'साधारण-धर्म' है। 'सरिस' (सदृश = समान) शब्द दोनों की समानता सूचित करता है, इससे 'वाचक' है।

उपमा के दो भेद होते हैं—(१) पूर्णोपमा और (२) लुप्तोपमा।

(१) पूर्णोपमा

जहाँ उपमा के चारों अंग (उपमेय, उपमान, साधारण-धर्म, वाचक) प्रकट रूप में वर्तमान हों वहाँ पूर्णोपमा होती है।

उदाहरण—(कबित्त)

फूलि उठे कमल-से अमल[1] हितू[2] के नैन
कहै 'रघुनाथ' भरे चैन-रस-सियरे[3]।
दौरि आए भौंर-से करत गुनी गुन-गान;
सिद्ध से सुजान सुखसागर सों नियरे[4]।
सुरभी[5]-सी खुलन सुकबि की सुमति लागी,
चिरिया-सी जागी चिंता जनक के जियरे[6]।
धनुष पै ठाढ़े राम रबि-से लसत आज,
भोर[7] के-से नखत[8] नरिंद[9] परे पियरे[10]॥

इस कवित्त के प्रथम चरण में 'नयन' उपमेय, 'कमल' उपमान, 'अमल' साधारण-धर्म और 'से' वाचक है। शेष चरणों में भी पूर्णोपमाएँ हैं, उन्हें स्वयम् समझ लेना चाहिए।

---

१ निर्मल। २ हितुआ (मित्र)। ३ शीतल। ४ निकट। ५ गाय। ६ हृदय में। ७ प्रभात। ८ नक्षत्र (तारे)। ९ राजा। १० पीले।

(२)—लुप्तोपमा

जहाँ उपमा के चारों अंगों (उपमेय, उपमान, साधारण-धर्म और वाचक) में से किसी एक, दो अथवा तीन का लोप हो वहाँ लुप्तोपमा होती है।

प्रस्तार करने से लुप्तोपमा के १४ भेद हो सकते हैं। किंतु उनमें से उपमेयोपमानलुप्ता, धर्मोपमेयोपमानलुप्ता और वाचकोपमेयोपमानलुप्ता में कोई चमत्कार नहीं हो सकता; क्योंकि केवल धर्म या वाचक से अथवा इन दोनों के रहने से उपमा का निर्वाह ठीक ठीक नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त 'वाचकधर्मोपमेयलुप्ता' में केवल उपमान रह जाता है। इससे यह आगे आनेवाली 'रूपकातिशयोक्ति' का विषय हो जाता है। इसलिए यहाँ केवल दस लुप्तोपमाओं का उल्लेख किया जाता है।

१—वाचकलुप्ता

जहाँ उपमेय, उपमान और धर्म रहें, वाचक न हो।

उदाहरण—(चौपाई)

सरद बिमल बिधु बदन सुहावन।

यहाँ वदन (मुख) उपमेय, विधु (चंद्रमा) उपमान और सुहावन (सुंदर) धर्म कहा गया है। 'सरिस' वाचक का लोप है।

२—धर्मलुप्ता

जहाँ उपमेय, उपमान और वाचक हों, पर धर्म न कहा जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी[1]।
हरषि सुधा सम गिरा उचारी[2]॥

यहाँ गिरा (वाणी) उपमेय, सुधा (अमृत) उपमान और सम वाचक तो हैं, पर 'मधुर' धर्म नहीं कहा गया है।

---

१ महादेव। २ कही।

३—उपमानलुप्ता

जहाँ उपमेय, धर्म और वाचक हों, पर उपमान लुप्त हो।

उदाहरण—(चौपाई)

समर-धीर नहिं जाइ बखाना।
तेहि सम नहिं प्रतिभट जग आना[1] ॥

यहाँ 'समर-धीर' (रण में डटा रहनेवाला व्यक्ति) उपमेय, 'प्रति-भटता' धर्म और 'सम' वाचक हैं। उपमान है ही नहीं।

४—उपमेयलुप्ता

जहाँ उपमान, धर्म और वाचक हों, पर उपमेय न कहा जाय।

उदाहरण—(सोरठा)

चंचल हैं ज्यों मीन[2], अरुनारे[3] पंकज[4]-सरिस।
निरखि न होय अधीन, ऐसो नर नागर[5] कवन ॥

यहाँ 'नयन' उपमेय का लोप है।

५—धर्मवाचकलुप्ता

जहाँ उपमेय और उपमान हों, पर धर्म और वाचक न हों।

उदाहरण—(चौपाई)

ईस-प्रसाद[6] असीस[7] तुम्हारी।
सब सुतबधू देवसरि-बारी ॥

यहाँ सुतबधू (पतोहुएँ) उपमेय और देवसरि-वारी (गंगाजल) उपमान कहे गए हैं, पर धर्म और वाचक का लोप है।

६—धर्मोपमानलुप्ता

जहाँ उपमेय और वाचक हों, पर धर्म और उपमान न कहे जायँ।

---

१ अन्य (दूसरा)। २ मछली। ३ लाल। ४ कमल। ५ चतुर। ६ कृपा। ७ आशीर्वाद।

उदाहरण— (चौपाई)

आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं।

यहाँ पुरंदर (इंद्र) उपमेय और सम वाचक तो हैं पर कोई उपमान और धर्म नहीं है।

७—धर्मोपमेयलुप्ता

जहाँ उपमान और वाचक तो हों पर उपमेय और धर्म न कहे जायँ।

उदाहरण—(सवैया)

त्यौर तिरीछे[1] किए मुनि संगहि हेरत[2] संभु-सरासन[3], मार[4] से।
त्यों 'लछिराम' दुहूँ कर बान, कमान[5]-सी भौहें, सुब्रह्मवतार से।
सामुहे[6] श्रीमिथिलापति के डटि ठाढ़े सही रस-बीर-सिँगार से।
नीलम[7]-चंपक-माल-से कौन ? स्वयंवर में मृगराज-कुमार[8] से॥

इस सवैया के प्रथम चरण में 'मार से' पद में राम-लक्ष्मण उपमेय और सुंदर धर्म का लोप है। इसी प्रकार शेष तीन चरणों में भी 'रस-वीर सिँगार से', 'नीलम पंचक-माल से' और 'मृग-राजकुमार से' में भी इसे समझ लेना चाहिए।

८—वाचकोपमानलुप्ता

जहाँ उपमेय और धर्म तो हों, पर उपमान और वाचक का लोप हो।

उदाहरण—(चौपाई)

चितवनि चारु मार-मद-हरनी।
भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥

यहाँ 'चितवनि' उपमेय और 'चारु' आदि धर्म हैं, पर उपमान और वाचक नहीं हैं।

---

१ तिरछे तेवर। २ देखते हैं। ३ शिव-धनुष। ४ कामदेव। ५ धनुष। ६ संमुख। ७ नीलमणि। ८ सिंह के बच्चे।

९—वाचकोपमेयलुप्ता

जहाँ उपमान और धर्म तो हों, पर उपमेय और वाचक न हों।

उदाहरण—(दोहार्ध)

चढ़ो कद[१]म पै कालिया, बिषधर देखो आय।

यहाँ 'काला नाग' उपमान और 'विष धारण करना' धर्म है। 'श्रीकृष्ण' उपमेय और 'सरिस' वाचक नहीं हैं।

१०—धर्मवाचकोपमानलुप्ता

जहाँ केवल उपमेय हो, उपमान, धर्म और वाचक का लोप हो।

उदाहरण—(चौपाई)

अति अनूप जहँ जनक-निवासू।

यहाँ 'जनक-निवासू' उपमेय है और 'अनूप' शब्द के द्वारा उपमान का अभाव दिखाया गया है। धर्म एवम् वाचक हैं ही नहीं।

सूचना—(१) कुछ लोग उपमेय के लोप में भी चमत्कार नहीं मानते। इस प्रकार वे केवल सात लुप्तोपमाएँ ही मानते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग यह भी मानते हैं कि उपमान के जिस अंग से उपमेय की समानता दिखाई जाती है यदि वह शब्द द्वारा न कहा जाय केवल उपमान का सूचक शब्द रख दिया जाय तो उपमान का लोप समझना चाहिए। यथा—'सूच्छम हरि कटि ऐन' में वस्तुतः 'कटि' उपमेय है। 'हरि (सिंह) शब्द उपमान नहीं है, उपमान यह तब होता जब इसके साथ एक 'कटि' शब्द और होता। इसलिए यह शब्द केवल उपमान का सूचक है। इस उदाहरण को वे लोग 'वाचकोपमानलुप्ता' का मानते हैं।

(२) उपमा को अँगरेजी में 'सिमिली (Simile) कहते हैं।

(३) मालोपमा

जहाँ एक उपमेय के बहुत से उपमान कहे जायँ वहाँ

---

१ कदंब का वृक्ष।

मालोपमा होती है। यह दो प्रकार की होती है—(१) भिन्न-धर्मा और (२) अभिन्न-धर्मा।

(१) भिन्नधर्मा—जहाँ अनेक उपमानों के पृथक्-पृथक् धर्मों से उपमा दी जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

हरन मोह-तम दिनकर-कर[1] से।
सेवक-सालि[2]-पाल जलधर से।
अभिमतदानि देवतरु[3]-बर से।
सेवत सुलभ सुखद हरिहर[4] से॥

यहाँ राम का नाम उपमेय है। दिनकर-कर (सूर्यकिरण), जलधर (बादल), देवतरु (कल्पवृक्ष) और हरिहर (विष्णु और शंकर) चार उपमान हैं। पहले उपमान का धर्म 'मोह-तम-हरन', दूसरे का 'पाल' (पालन), तीसरे का अभिमतदानि (मनोवांछित देना) और चौथे का 'सेवत सुलभ सुखद' है। चारों उपमानों के धर्म भिन्न-भिन्न हैं, अतः भिन्नधर्मा मालोपमा है।

(२) अभिन्नधर्मा—जहाँ सभी उपमानों का एक ही धर्म कहा जाय।

उदाहरण—(कबित्त)

जेठ-भानु-कर[5] से, कपिल-कोप-लर[6] से हैं,
माल-दवानल से, त्यों गजब गहर[7] से।
काल बिकरारे से कुमार-दामिनी से देव,
दारुन कला से, प्रलै-सिंधु की लहर से।
'लछिराम' जालिम जँजीरे जमजाल से ये,
कालदंड ख्याल से कमालिया कहर[8] से।

---

१ सूर्यकिरण। २ धान्य। ३ कल्पवृक्ष। ४ विष्णु और शिव। ५ जेठ के सूर्य की किरणें। ६ लड़ी, समूह। ७ गह्वर, दुर्गम स्थल। ८ भीषण संकट।

कालिका-कृपान, मुंडमाली के त्रिसूल से हैं,
रामचंद्र-बान फनमाली[1] के जहर से ॥

यहाँ रामचंद्र के बाणों की उपमा 'जेठ-भानु-कर' आदि कई उपमानों से दी गई है। सबका एक ही धर्म 'तीखापन' है। इसलिए यहाँ अभिन्नधर्मा मालोपमा है।

'मालोपमा' = माला + उपमा। उपमा की माला।

(२) अनन्वय

'जहाँ होय उपमेय को, उपमेयै उपमान।'

जहाँ उपमेय और उपमान एक ही हों, वहाँ अनन्वय अलंकार होता है।

'अनन्वय' शब्द का खंड है—अन् + अन्वय = संबंध अर्थात् दूसरे से संबंध न होना। इस अलंकार में उपमेय का दूसरे (उपमान) के साथ संबंध नहीं दिखलाया जाता। वह स्वयम् अपना उपमान बन जाता है। इसका कारण यह होता है कि उपमेय के समान उत्कृष्ट गुणोंवाला कोई उपमान ही नहीं मिलता, जिसकी उपमा दी जा सके।

उदाहरण (अर्धाली)

(१) लही न कतहुँ हारि हिय मानी।
इन सम येइ उपमा उर आनी ॥

यहाँ 'इन सम येइ' में उपमेय स्वयम् अपना उपमान बतलाया गया है।

(२) राम से राम सिया सी सिया,
सिरमौर बिरंचि[2] बिचारि सँवारे[3]।

यहाँ 'राम से राम' और 'सिया सी सिया' में दो बार अनन्वय अलंकार आया है।

---

१ शेष। २ ब्रह्मा। ३ बनाए।

सूचना—'अनन्वय' को अँगरेजी में 'कंपेरीजन ऐब्सोल्यूट' (Comparison Absolute) कहते हैं।

(३) उपमेयोपमा

'उपमा लागै परस्पर उपमेयौ उपमान।'

जहाँ उपमेय और उपमान परस्पर एक दूसरे के उपमान और उपमेय हों वहाँ उपमेयोपमालंकार होता है।

इस अलंकार में उपमेय और उपमान के परस्पर उपमान और उपमेय होने का कारण है उपमेय के लिए उपमान के अतिरिक्त किसी अन्य उपयुक्त उपमान का न मिलना। उपमेय के लिए जहाँ केवल एक ही उपयुक्त उपमान मिले वहाँ उपमेयोपमालंकार बनेगा।

उदाहरण—(कवित्त)

भरत लखन सत्रुहन मोर-मंडली लौं,
मोर-वृंद भाग भरतादि के समा[1] सो हैं।
'लछिराम' झर-मघा[2] दान-रघुबंसिन सो,
दान रघुबंसिन को झरत मघा सो है।
मालाकार बीजुरी लौं मैथिली[3]-बिलासबर,
मैथिली-बिलास बीजुरी की अरमा[4] सो है।
राम रघुबीर स्यामघन-परमा[5] सो भरयौ,
स्यामघन राम रघुबीर-परमा सो है॥

यहाँ प्रथम चरण में भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न उपमेय को 'मोरमंडली' उपमान के समान कहा गया है। फिर मोरमंडली उपमान (जो उपमेय बन गया है) के उपमान भरतादि (भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न) उपमेय बतलाए गए हैं। इसी प्रकार अन्य चरणों में भी उपमेयोपमालंकार है, प्रत्येक चरण में एक।

---

१ छटा। २ मघा नाम का नक्षत्र जिसमें पानी बहुत बरसता है। ३ सीता। ४ चमक। ५ शोभा।

सूचना—उपमेयोपमा को अँगरेजी में 'रिसिप्रोकल कंपेरीजन' (Receprocal Comparison) कहेंगे।

(४) प्रतीप

'सो प्रतीप उपमेय सम, जब कहिये उपमान।'

जहाँ उपमान को उपमेय बनाया जाय अथवा उपमेय से उपमान का निरादर कराया जाय वहाँ प्रतीपालंकार होता है।

'प्रतीप' शब्द का अर्थ है 'उलटा'। इस अलंकार में उपमा का उलट-फेर दिखाया जाता है, इसी से इसे 'प्रतीप' कहते हैं। इसके पाँच भेद कहे गए हैं।

(१) प्रथम प्रतीप

'जहँ प्रसिद्ध उपमान को, पलटि करिय उपमेय।'

जहाँ प्रसिद्ध उपमान[1] को, उपमेय कल्पित किया जाय।

उदाहरण—(कबित्त)

बान सो बजर[2] मघवान[3] को बखान्यो जात,
धनु लौं कमान-काम रोष-रुचिराई मैं।
सत्य सो बिसद छीर-सागर मही मैं फैल्यौ,
साहस लौं केहरी-बिरद[4]-सुघराई मैं।
'लछिराम' राम रावरे की सान साहिबी सो,
मघवान मंडित प्रचंड बीरताई मैं।
ओज सो अखंड भान[5] मानै आसमान बीच,
दान सो बिराजै सुरतरु[6] अमराई[7] मैं॥

यहाँ प्रसिद्ध उपमान इंद्र को उपमेय बनाया गया है और रामचंद्र

---

१ कवि-संप्रदाय में गृहीत कमल, चंद्रमा आदि उपमान। २ वज्र। ३ इंद्र। ४ बाना। ५ सूर्य। ६ कल्पवृक्ष। ७ देवताओं का बाग।

उपमेय को उपमान बनाकर उनकी कई वस्तुओं और विशेषताओं को भी (इंद्र की तादृश उपमान-वस्तुओं को उपमेय बनाकर उनका) उपमान बना दिया गया है।

(२) द्वितीय प्रतीप

'जहाँ होय उपमान सों, उपमेय का अमान।'

जहाँ कल्पित उपमेय द्वारा वर्णनीय (उपमेय) का निरादर किया जाय।

उदाहरण—(सवैया)

बारन[1]-बृंद सो स्याम-घटा, अरुझानी रहै सिखराली[2] पहार है।
त्यों 'लछिराम' प्रताप सों रावरे, सूरज बारहो को अवतार है।
औध सो श्री 'रघुनाथ' नरेस, बन्यो अमरावती[3] मंगलाचार[4] है।
कीरति कैसे गरूर करै धरा, या विधि पावन गंग की धार है॥

यहाँ वारण (हाथी) उपमेय का कल्पित उपमेय (उपमान) स्यामघटा से निरादर कराया गया है। इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिए।

(३) तृतीय प्रतीप

'आदर घटत अबर्न्य[5] को, जहाँ बर्न्य[6] के जोर'।

जहाँ कल्पित उपमेय का वर्णनीय के द्वारा निरादर किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

गरब करत कत चाँदनी, हीरक[7] छीर[8] समान।
फैली इती समाजगत, कीरति-सिवा-खुमान[9]॥

---

१ हाथी। २ चोटी। ३ इंद्र की नगरी। ४ मंगलमयी। ५ उपमान। ६ उपमेय। ७ हीरा। ८ (क्षीर) दूध। ९ आयुष्मान।

यहाँ 'चाँदनी' कल्पित उपमेय का 'शिवा की कीर्ति' द्वारा 'गर्व क्यों करती है ?' कहकर निरादर किया गया है ।

(४) चतुर्थ प्रतीप

'उपमा को जु अनादरै, बरन[1] आदरै, देखि ।'

जहाँ कल्पित उपमेय को कल्पित उपमान द्वारा दी गई समता अयोग्य ठहराई जाय ।

उदाहरण—(दोहा)

'राम रावरे बदन[2] की, सरवरि[3] करत मयंक[4] ।
ते कबिगन झूठे जगत, लखि मलीन सकलंक ॥

इस दोहे में कल्पित उपमेय मयंक (चंद्रमा) के साथ कल्पित उपमान राम-मुख की समता ही अयोग्य बताई गई है ।

(५) पंचम प्रतीप

'बर्ननीय के सामुहें, व्यर्थ होय उपमान ।'

'जब उपमान का कार्य करने के लिए उपमेय (वर्णनीय) ही समर्थ है तब उपमान की क्या आवश्यकता' कहकर जहाँ उपमान की व्यर्थता बताई जाय ।

उदाहरण—(दोहा)

प्रभा-करन तम-गुन-हरन, धरन-सहसकर[5]-राजु ।
तव प्रताप ही जगत मैं, कहा भानु सों काजु ॥

यहाँ वर्णनीय प्रताप के, भानु (सूर्य) उपमान का कार्य कर लेने की क्षमता रखने के कारण, उस (सूर्य) की व्यर्थता दिखाई गई है ।

सूचना—'प्रतीप' का नाम अँगरेजी में 'कन्वर्स (Converse) है ।

---

१ उपमेय । २ मुख । ३ समानता । ४ (मृगांक) चंद्रमा । ५ हजार किरणों से ।

(५) रूपक

'उपमेयरु उपमान जहँ, एकै रूप कहायँ।'

जहाँ उपमेय को उपमान-रूप कहा जाय वहाँ रूपकालंकार होता है।

'रूपक' शब्द का अर्थ है 'रूप धारण करना'। इस अलंकार में उपमेय उपमान का रूप धारण करता है।

इसके दो भेद होते हैं—१ अभेद और २ तद्रूप।

(१) अभेद रूपक

जहाँ बिना निषेध के उपमेय और उपमान अभेद रूप से कहे जायँ।

'बिना निषेध' का तात्पर्य यह है कि आगे कहे जानेवाले 'अपह्नुति अलंकार' से भिन्नता हो; क्योंकि वहाँ भी 'अभेदता' होती है, पर वह निषेधपूर्वक होती है।

उदाहरण—(दोहा)

प्रेम-अमिय मंदरु बिरहु, भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर-साधु-हित[1], कृपासिंधु रघुबीर॥

यहाँ पर प्रेम में अमृत का, विरह में मंदराचल का और भरत में क्षीर-सागर का अभेद आरोप किया गया है।

इसके तीन भेद हैं—१ सावयव (सांग), २ निरवयव (निरंग) और ३ परंपरित।

१—सावयव

जहाँ अवयवों अर्थात् अंगों-सहित उपमान का उपमेय में आरोप किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

नारि-कुमुदिनी अवध-सर, रघुबर-बिरह-दिनेस।
अस्त भए बिकसत भईं, निरखि राम राकेस॥

---

१ वास्ते, लिए।

यहाँ पर आरोप्यमाण (जिनका आरोप किया जाता है वे) कुमुदिनी (रात में खिलनेवाली कुईं), सर (तालाब), दिनेश (सूर्य) तथा राकेश (चंद्रमा) का और आरोप्य-विषय (जिन पर आरोप किया जाता है वे) नारि (स्त्रियाँ) अवध (अयोध्या), रघुवीर-विरह और राम का शब्दों द्वारा स्पष्ट रूप से कथन किया गया है। अतः सावयव रूपक है।

२—निरवयव

जहाँ अवयवों (अंगों) अर्थात् सामग्री के विना केवल उपमान का उपमेय में आरोप किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

अवसि चलिय बन राम पहँ, भरत मंत्र[1] भल कीन्ह।
सोक-सिंधु बूड़त सबहि, तुम अवलंबन दीन्ह॥

यहाँ पर 'सिंधु' (समुद्र) का बिना किसी अंग के 'सोक' पर आरोप किया गया है।

३—परंपरित

जहाँ प्रधान रूपक का कारण एक दूसरा ही रूपक हो अर्थात् प्रधान रूपक के लिए पहले किसी अंतर्गत रूपक का निरूपण कर लिया जाय।

'परंपरित' शब्द का अर्थ है 'सिलसिलेवार'। इस रूपक में पहले एक रूपक बनाया जाता है और उस रूपक के आधार पर एक दूसरे रूपक का वर्णन या निरूपण होता है। इसी से इसे 'परंपरित' रूपक कहते हैं।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

मोह-महाघन-पटल-प्रभंजन।
संसय-बिपिन[2]-अनल[3]-सुर-रंजन[4]॥

---

१ सलाह। २ बन। ३ आग। ४ देवताओं को प्रसन्न करनेवाले।

यहाँ राम पर 'प्रभंजन' (आँधी) उपमान का आरोप प्रधान रूपक है, पर राम को प्रभंजन कहने के पहले महामोह पर घनपटल (बादलों का परदा) उपमान का आरोप कर लिया गया है, जो 'राम-प्रभंजन' रूपक का कारण है। इसी प्रकार दूसरे चरण में भी समझ लेना चाहिए।

(२) तद्रूप रूपक

जहाँ उपमेय को उपमान से भिन्न रखकर भी उसी का रूप और उसी का कार्य करनेवाला कहा जाय।

'तद्रूप' शब्द का अर्थ है 'उसका रूप'। इसमें उपमेय केवल उपमान-रूप कहा जाता है, दोनों का अभेद नहीं हो जाता।

उदाहरण —(दोहा)

रच्यौ विधाता[1] दुहुँन लै, सिगरी[2] सोभा-साज।
तू सुंदरि ! सचि दूसरी, यह दूजो सुरराज॥

इस दोहे में दूसरी शची (इंद्राणी और दूसरा सुरराज (इंद्र) कहकर उपमेय को उपमान से भिन्न तो रखा गया है पर उसी का रूप बताया गया है।

सूचना—रूपक को अँगरेजी में 'मेटाफर' (Metaphor) कहते हैं।

(६) तुल्ययोगिता

'जहाँ एकता धर्म की वस्तु अनेकन होय'

जहाँ अनेक वस्तुओं (प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत) के धर्मों की एकता कही जाय। 'तुल्ययोग' शब्द का अर्थ है 'एकता'। इस अलंकार में कई वस्तुओं (प्रस्तुत या अप्रस्तुत) के धर्मों की एकता का वर्णन होता है।

इसके तीन प्रकार हैं—

(१) प्रथम तुल्ययोगिता—जहाँ वर्ण्यों (उपमेयों) अथवा

---

१ ब्रह्मा। २ समस्त।

अवर्ण्यों (उपमानों) का एक धर्म कहा जाय।

(क) वर्ण्यों की धर्म-एकता

उदाहरण—(दोहा)

तोहि जीति हर को हरा, अरि को सुरपुर-बास।
सुर-बनितनि को पति मिलै तेरे कोप-प्रकास॥

यहाँ हर (महादेव), अरि (शत्रु), सुर-वनिताओं (अप्सराओं) इन तीन प्रस्तुतों का एक ही धर्म 'मिलै' कहा गया है।

(ख) अवर्ण्यों की धर्म-एकता

उदाहरण—(दोहा)

सिव सरजा भारी भुजन, भुव-भरु[1] धर्यो सभाग।
'भूषन' अब निहचिंत हैं सेसनाग दिगनाग॥

इस दोहे में शेषनाग और दिग्गज (जो भुजा उपमेय के उपमान हैं) का एक धर्म 'निश्चिंत हैं' कहा गया है।

(२) द्वितीय तुल्ययोगिता—जहाँ हित (मित्र) और अहित (शत्रु) में एक-ही प्रकार की वृत्ति दिखाई जाय।

उदाहरण—(दोहा)

जे निसिदिन सेवन करैं, अरु जे करैं विरोध।
तिन्हैं परमपद देत हरि, कहौ कौन यह बोध॥

यहाँ विष्णु भगवान् सेवा करनेवाले और विरोध करनेवाले दोनों को मुक्ति देकर उनके साथ एक सा व्यवहार करते हैं।

(३) तृतीय तुल्ययोगिता—जहाँ प्रस्तुत (उपमेय) का उत्कृष्ट गुण वाले अप्रस्तुतों (उपमानों) के साथ वर्णन किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

भोज बिक्रमादित्य नृप, जगदेवो[2] रनधीर।
दानिन हूँ के दानि दिन इंद्रजीत बर बीर॥

---

१ पृथ्वी का भार। २ एक प्रसिद्ध दानी।

यहाँ इंद्रजीत का भोज, विक्रमादित्य और जगदेव तीन उपमानों के साथ वर्णन किया गया है।

सूचना—(१) द्वितीय उल्लेख में एक व्यक्ति एक ही व्यक्ति का अनेक प्रकार से पर विषय-भेद से वर्णन करता है, पर तुल्ययोगिता में उपमेय को केवल उपमानों के साथ मिलाकर वर्णन करते हैं। विषय-भेद का प्रश्न यहाँ नहीं रहता, उपमान का प्रश्न वहाँ नहीं रहता।

(२) 'तुल्ययोगिता' को अँगरेज़ी में 'ईक्वल पेयरिंग' (Equal Pairing) कहेंगे।

(७) दीपक

'बर्न्य अबर्न्यन को जहाँ, एकै धर्म कहाय।'

जहाँ उपमेय और उपमान का एक ही धर्म कहा जाय।

उदाहरण—(दोहा)

गज-मद सों नृप तेज सों, सोभा लहत बनाय।

यहाँ नृप उपमेय और गज उपमान दोनों का एक धर्म 'शोभा पाना' कहा गया है।

इसके अतिरिक्त एक प्रकार का और दीपक होता है जिसे 'आवृत्ति-दीपक' कहते हैं।

आवृत्ति-दीपक

'क्रियापदन को होत जहँ, आवर्तन को जोग।'

जहाँ क्रिया-पदों की आवृत्ति हो वहाँ 'आवृत्ति-दीपक' होता है।

उदाहरण—(दोहा)

भलो भलाई पै[1] लहै[2], लहै निचाई नीच।
सुधा[3] सराहिय[4] अमरता, गरल[5] सराहिय मीच[6]॥

---

१ निश्चित रूप से। २ शोभा पाता है। ३ अमृत। ४ प्रशंसा की जाती है। ५ विष। ६ मृत्यु।

यहाँ 'लहै' और 'सराहिय' क्रिया-पद दो-दो बार आए हैं।

इसके तीन भेद होते हैं—१ पदावृत्ति, २ अर्थावृत्ति और ३ पदार्थावृत्ति।

१—पदावृत्ति

'अर्थ दोय पद एक की, आवृति करिये जौन।'

जहाँ भिन्न-भिन्न अर्थवाले, पर एक ही आकार के क्रिया-पद की आवृत्ति हो।

उदाहरण—(दोहा)

बहैं[1] रुधिर-सरिता[2], बहैं[3] किरबानैं[4] कढ़ि कोस[5]।
वीरन बरहिं[6] बरांगना[7], बरहिं[8] सुभट रन-रोष[9]॥

यहाँ 'बहैं' और 'बरहिं' दो क्रिया-पदों की आवृत्ति है, पर इनके अर्थ वदल-वदल गए हैं।

२—अर्थावृत्ति

'सव्द भिन्न पै अर्थ इक की जहँ आवृति होय।'

जहाँ भिन्न-भिन्न रूप के एकार्थवाची क्रियापदों की आवृत्ति हो।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

पय-पयोधि[10] तजि अवध बिहाई[11]।
जहँ सिय-राम-लखन रहे आई॥

यहाँ 'तजि' और 'बिहाई' का एक ही अर्थ है।

३—पदार्थावृत्ति

'पद अरु अर्थ दुहून की आवृति होवै जौन।'

जहाँ एक ही आकार और अर्थ वाले क्रिया-पदों की आवृत्ति हो।

---

१ बहती हैं। २ खून की नदियाँ। ३ चलती हैं। ४ तलवारें। ५ म्यान। ६ वरण करती हैं। ७ सुंदर स्त्रियाँ (अप्सराएँ)। ८ जलते हैं। ९ क्रोध। १० क्षीर-सागर। ११ त्यागकर।

उदाहरण—(दोहा)

तोर्‌यो नृपगन को गरब, तोर्‌यो हर-कोदंड[1]।
राम जानकी-जीव को, तोर्‌यो दुःख अखंड ॥

यहाँ 'तोर्‌यो' शब्द तीन बार आया है और तीनों स्थानों पर एक ही अर्थ है।

सूचना—(१) पदावृत्ति और यमक में एवम् पदार्थावृत्ति और लाटानुप्रास में अंतर यह है कि आवृत्ति-दीपक में केवल क्रिया-पद प्रयुक्त होते हैं पर उन दोनों में क्रिया-पद नहीं आते।

(२) 'दीपक' का अँगरेजी नाम 'इल्यूमिनेटर' (Illuminator) है।

(८) उल्लेख

'एकहि बहु विधि बरनिये, सो उल्लेख उलेखि।'

जहाँ एक व्यक्ति का अनेक प्रकार से वर्णन हो वहाँ उल्लेखालंकार होता है।

'उल्लेख' शब्द का अर्थ है 'चित्रण करना, वर्णन करना।'

इसके दो प्रकार होते हैं—(१) प्रथम उल्लेख (एक व्यक्ति का वर्णन अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार से करें), (२) द्वितीय उल्लेख (एक व्यक्ति का एक ही व्यक्ति अनेक प्रकार से वर्णन करे)।

(१) प्रथम उल्लेख

'एकहिं बहु बहु विधि लखैं।'

जहाँ एक व्यक्ति का अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार से वर्णन करें।

उदाहरण—(सवैया)

एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सबकी चित-चाहै।
एक कहैं अवतार मनोज[2] को यों तन में अति सुंदरता है।
'भूषन' एक कहैं महि-इंदु[3] यों राज बिराजत बाढ्यो महा है।

---

१ महादेव का धनुष। २ कामदेव। ३ चंद्रमा।

एक कहैं नरसिंह[1] है संगर एक कहैं नर-सिंह[2] सिवा है ॥

यहाँ एक ही व्यक्ति शिवाजी का—अनेक व्यक्ति, कल्पद्रुम आदि कहकर—अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं।

(२) द्वितीय उल्लेख

'एकहि वरनि वहु रीति'

जहाँ एक व्यक्ति का एक ही व्यक्ति अनेक प्रकार से वर्णन करे।

उदाहरण—(सवैया)

औधपुरी अमरावती के अमरेस[3]प्रकास-प्रताप-सँवारे।
मौलि[4]महीपन के भुव-मंडल-मंडित छत्र-बिलास बगारे[5]।
संत मुनी द्विज दीनन के 'लछिराम' सहायक पाहरू[6] भारे।
मैथिली-नैन के चारु चकोर सदा कलपद्रुम राम हमारे ॥

यहाँ एक ही व्यक्ति कवि एक ही व्यक्ति रामचंद्र का अनेक प्रकार से वर्णन करता है।

सूचना—'उल्लेख' को अँगरेजी में 'रिप्रेजेंटेशन' (Representation) कहेंगे।

(९) स्मरण

'कछु लखि कछु सुनि सोचि कछु, सुधि आवै कछु खास।'

जहाँ पूर्व समय में देखी, सुनी या समझी हुई वस्तु के समान दूसरी वस्तु के देखने, सुनने और सोचने से उसकी याद आ जाय वहाँ स्मरणालंकार होता है।

उदाहरण—(कबित्त)

तुम सिवराज ब्रजराज[7] अवतार आज,
तुम ही जगत-काज पोषत-भरत हौ।

---

१ नृसिंह। २ मनुष्यों में श्रेष्ठ। ३ इंद्र। ४ सिर (श्रेष्ठ)। ५ फैले हुए। ६ द्वारपाल (रक्षक)। ७ कृष्ण।

तुम्हैं छाँड़ि यातें काहि बिनती सुनाऊँ,
मैं तुम्हारे गुन गाऊँ तुम ढीले क्यों परत हौ।
'भूषन' भनत वहि कुल मैं नयौ गुनाह[1]
नाहक[2] समुझि यह चित्त में धरत हौ।
और बाम्हनन देखि करत सुदामा-सुधि,
मोहिं देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥

यहाँ अन्य ब्राह्मणों को देखकर सुदामा का तथा 'भूषण' को देखकर भृगु का स्मरण हो आना वर्णित है।

कभी-कभी वैधर्म्यी पदार्थ के देखने से भी स्मरण हो आता है।

ज्यौं-ज्यौं इत देखियत मूरख बिमुख लोग,
त्यौं-त्यौं ब्रजबासी-सुखरासी मन भावै हैं।
खारे जल छीलर[3] दुखारे[4] अंध-कूप देखि,
कालिंदी[5] के कूल-काज[6] मन ललचावै हैं।
जैसी अब बीतति सो कहतै बनै न बैन,
'नागर' ना चैन परै प्रान अकुलावै हैं।
थूहर[7] पलास देखि-देखि कै बबूर बुरे,
हाय हरे-हरे वे तमाल सुधि आवै हैं॥

इस कवित्त में 'मूर्ख और हरि-भक्ति-विमुख लोगों को देखकर सुख-राशि ब्रजवासियों का स्मरण हो आना' वर्णित है।

सूचना—'स्मरण' का अँगरेजी नाम 'रहेटॉरिकल रिकलेक्शन' (Rhetorical Recollection) होगा।

(१०) भ्रांतिमान्

'भ्रांति और की और मैं, निश्चित जब अनुमान।'

जहाँ उपमान के समान उपमेय को देखने पर उपमान का निश्चयात्मक भ्रम हो जाय वहाँ भ्रांतिमान् अलंकार होता है।

---

१ दोष। २ व्यर्थ। ३ गड़ही। ४ दुःखदायी। ५ यमुना। ६ तट के लिए। ७ सेहुड़।

उदाहरण—(दोहा)

बिल बिचारि प्रबिसन लग्यौ व्याल[1] सुंड मैं व्याल[2] ।
ताहू कारी ऊँख भ्रम, लियो उठाइ उताल[3] ॥

इस दोहे में सर्प को हाथी की सूंड़ में बिल का निश्चयात्मक भ्रम हुआ है और हाथी को सर्प में काली ऊख की भ्रांति हुई।

सूचना—इस अलंकार का अँगरेजी नाम 'मिस्टेकर' (Mistaker) होगा।

(११) संदेह

'बहु विधि बर्नत वर्न्य को, नियत न तथ्य-अतथ्य।'

जहाँ सत्यासत्य का ठीक निश्चय न होने के कारण उपमेय का उपमान के रूप में वर्णन किया जाय।

उदाहरण—(कबित्त)

कैधों हिम-भूधर[4] की कलित कलंगी[5] तीन,
ताज[6]-मध्य कैधों ये तिलक असुरारी[7] को।
कैधों सत्व, रज, तम सोभित एकत्र कैधों,
बिजय-निसान तीनि लोक भट-भारी को।
कैधों त्रयताप त्यौरी बदलि बिलोकैं बैठि,
भूमिसुर[8]-सज्जन-बिबुध[9]-बिघ्नकारी को।
कैधों 'बद वैद्यनाथ' जल-थल-व्योमचर,
आरतन-त्रास[10] कै त्रिसूल त्रिपुरारी को॥

यहाँ शिव के त्रिशूल उपमेय का हिमालय की कलंगी आदि उपमानों के रूप में वर्णन किया गया है।

सूचना—इस अलंकार का अँगरेजी नाम 'डाउट' (Doubt) होगा।

---

१ हाथी। २ सर्प। ३ शीघ्रता से। ४ हिमालय। ५ किरीट। ६ मुकुट। ७ विष्णु। ८ ब्राह्मण। ९ देवता। १० दुखियों का भय।

(१२) अपह्नुति

'मिथ्या कीजै सत्य को, सत्य जु मिथ्या होत।'

जहाँ उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोप किया जाय।

'अपह्नुति' शब्द का अर्थ 'छिपाना' है। इस अलंकार में उपमेय का निषेध करके उसे छिपाया जाता है।

इसके छः भेद होते हैं—(१) शुद्धापह्नुति, (२) हेत्वपह्नुति, (३) पर्यस्तापह्नुति, (४) भ्रांतापह्नुति, (५) छेकापह्नुति और (६) कैतवापह्नुति।

(१) शुद्धापह्नुति

'दुरै सत्य उपमेय को, प्रगट करै उपमान।'

जहाँ वास्तविक उपमेय का निषेध करके उपमान की स्थापना की जाय।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

मैं जो कहा रघुवीर कृपाला।
वंधु न होय मोर यह काला॥

यहाँ सुग्रीव के कथन में वास्तविक उपमेय 'वंधु' (बालि) का निषेध करके 'काल' उपमान की स्थापना की गई है।

(२) हेत्वपह्नुति

'सुद्धापन्हुति में जहाँ, कहिए हेतु बनाय।'

जहाँ उपमेय का निषेध करके उपमान की स्थापना करने में कारण भी बतलाया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

राति-साँझ रबि होत नहिं, ससि नहिं तीव्र सु लाग।
उठी लखन अवलोकिये, बारिधि[1] सों बड़वाग॥

---

१ समुद्र।

यहाँ पर शशि (चंद्रमा) में बाड़वाग्नि की स्थापना करने का कारण रात में सूर्य का न होना और चंद्रमा का तीव्र न लगना बतलाया गया है।

(३) पर्यस्तापह्नुति

'धर्म और में राखिये, धर्मी साँच छिपाय।'

जहाँ किसी वस्तु के धर्म का निषेध दूसरी वस्तु में उसकी स्थापना करने के लिए किया जाय।

'पर्यस्त' शब्द का अर्थ है 'फेंका हुआ'। इस अलंकार में एक वस्तु का धर्म दूसरी वस्तु पर फेंका (स्थापित किया) जाता है। इसीलिए जिस वस्तु के धर्म का निषेध किया जाता है उसका प्रयोग प्रायः दो बार होता है।

उदाहरण—(दोहा)

है न सुधा यह, है सुधा संगति-साधु-समाज।

यहाँ 'सुधा' (अमृत) से 'सुधात्व' धर्म का निषेध करके साधु-समाज की संगति में उसका स्थापन किया गया है।

(४) भ्रांतापह्नुति

'भ्रम-संका मन और के, कछु कारन तें होय।
दूरि करै कहि सत्य जो, भ्रांतापन्हुति सोय॥'

जहाँ किसी को किसी पदार्थ में अन्य पदार्थ का भ्रम हो जाय और उसका निवारण सत्य बात कहकर किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू। लूक[1] न असनि[2] न केतु न राहू।
ये किरीट दसकंधर केरे। आवत बालि-तनय के प्रेरे॥

इस चौपाई में रामचंद्र की सेना को रावण के किरीटों में

---

१ उल्का। २ वज्र।

लूक आदि का भ्रम हो गया था, जिसका निवारण उत्तरार्द्ध में किया गया है।

(५) छेकापह्नुति

'संका नासै और की, साँची बात दुराय।'

जहाँ किसी गुप्त बात को किसी प्रकार से सूचित करके फिर उसे छिपाया जाय।

'छेक' शब्द का अर्थ है 'चतुर'। इस अपह्नुति में कोई व्यक्ति अपनी गुप्त बात किसी से कहता है, पर उसका भेद कोई तीसरा व्यक्ति न समझ ले इसी से वह अपनी कही हुई बात को दूसरा ही अभिप्राय बतलाकर छिपाता है। इसे 'मुकरी' भी कहते हैं। 'मुकरी' का अर्थ 'पलट जाना', 'बदल जाना' है। जो बात पहले कही गई थी उसका निषेध करके दूसरे अभिप्राय का आरोप होने से इसे 'मुकरी' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

तिमिर-वंस-हर[1], अरुन-कर[2], आयो सजनी भोर।
'सिव सरजा[3]'? चुप रहि सखी, सूरज[4] कुल-सिरमौर[5]॥

इस दोहे में 'तिमिर-वंस-हर', 'अरुन-कर' और 'आयो भोर' कहने पर श्रोता ने 'शरजाह शिवाजी' कहा, पर वक्ता ने 'सूर्य' कहकर बात छिपा ली।

(६) कैतवापह्नुति

'मिस व्याजादिक सब्द दै, कहै आन को आन।'

जहाँ पर उपमेय का निषेध कैतव, मिस, व्याज आदि शब्दों द्वारा किया जाय।

---

१ अंधकार का समूह हरण करनेवाला और तैमूर के वंशजों (मुगलों) को मारनेवाला। २ लाल रंग की किरणोंवाला और (रक्त) लाल हाथोंवाला। ३ शरजाह। ४ सूर्य। ५ वंश में श्रेष्ठ।

'कैतव' शब्द का अर्थ है 'छल', 'बहाना'। इस अपह्नुति में अन्य अपह्नुतियों की भाँति स्पष्ट 'न' से निषेध नहीं किया जाता, वरन् 'कैतव' आदि ।शब्दों से इसका निषेध जरा घुमा-फिराकर किया जाता है और अर्थ के द्वारा अपह्नुति का बोध होता है, इसी से इसे 'आर्थी अपह्नुति' भी कहते हैं।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

लखी नरेस बात फुरि साँची।
तिय-मिस मीचु सीस पर नाँची॥

यहाँ पर 'स्त्री के बहाने मृत्यु के सिर पर नाचने' का भाव यह है कि कैकेयी वस्तुतः स्त्री नहीं मृत्यु है। यहाँ 'मिस' शब्द से कैकेयी (तिय) का निषेध और मृत्यु की उसमें स्थापना वर्णित है।

सूचना—'अपह्नुति' का अँगरेज़ी नाम 'कंसीलमेंट (Concealment) है।

(१३) उत्प्रेक्षा

'आन बात को आन में, जहँ संभावन होय।'

जहाँ उपमेय (प्रस्तुत) की उपमान (अप्रस्तुत) रूप में संभावना की जाय।

'उत्प्रेक्षा' शब्द का खंड है—उद् + प्र + ईक्षा अर्थात् प्रधानता से बलपूर्वक देखना। इस अलंकार में उपनाम से भिन्न जानते हुए भी बलपूर्वक प्रधानता से उपमेय में उपमान की संभावना की जाती है।

उदाहरण—(दोहा)

लता-भवन तें प्रकट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग-बिमल-बिधु, जलद-पटल[१] बिलगाइ[२]॥

१ बादलों का परदा। २ हटाकर।

यहाँ पर लता-कुंज से राम-लक्ष्मण उपमेय के निकल पड़ने में उनके दो निर्मल चंद्रों से भिन्न होते हुए भी उनमें बलपूर्वक इनकी संभावना की गई है ।

इस अलंकार के वाचक मनु, जनु, मानो, जानो, इव, खलु आदि हैं । इसके तीन भेद हैं—१ वस्तु, २ हेतु और ३ फल ।

(१) वस्तूत्प्रेक्षा

जहाँ एक वस्तु (उपमान) की संभावना दूसरी (उपमेय) के रूप में हो ।

उदाहरण—(दोहा)

सखि सोहत गोपाल के, उर गुंजन की माल ।
बाहिर लसति मनों पिये, दावानल की ज्वाल[1] ॥

यहाँ पर श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर पड़ी हुई गुंजों की माला वस्तु (उपमेय) में दावाग्नि की ज्वाला (उपमान) की संभावना की गई है ।

(२) हेतूत्प्रेक्षा

जहाँ अहेतु (जो वस्तुतः हेतु नहीं है) को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय ।

उदाहरण—(दोहा)

रवि-अभाव लखि रैन[2] में, दिन लखि चंद्र-बिहीन ।
सतत उदित यहि हेतु जनु, जस-प्रताप भुवि[3] कीन ॥

किसी राजा के यश-प्रताप के पृथ्वी पर फैलने का वर्णन है । राजा ने पृथ्वी पर, रात में सूर्य के उदित न होने और दिन में चंद्र का प्रकाश न रहने के कारण ही, वस्तुतः अपने प्रताप

---

१ एक बार श्रीकृष्ण ब्रजवासियों को बचने के लिए दावाग्नि पी गये थे । २ रात्रि । ३ पृथ्वी पर ।

और यश को नहीं फैलाया है; किंतु इसे ही हेतु मान कर उत्प्रेक्षा की गई है।

(३) फलोत्प्रेक्षा

जहाँ अफल (जो वस्तुतः फल न हो) को फल मानकर उत्प्रेक्षा की जाय।

उदाहरण—(दोहा)

दुवन-सदन[१] सबके वदन, 'सिव-सिव' आठौ जाम।
निज बचिबे कों जपत जनु, तुरकौ[२] हर[३] कौ नाम॥

इस दोहे में मुसलमानों का 'शिव-शिव' (शिवाजी का नाम) कहना अपनी रक्षा के लिए भगवान् शंकर का जप करना नहीं है; पर इसी अफल को फल मान कर उत्प्रेक्षा की गई है।

सूचना – हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा का अंतर क्रिया से ज्ञात होता है। यदि क्रिया किसी हेतु से की गई हो तो हेतूत्प्रेक्षा और किसी फल-प्राप्ति की इच्छा से की गई हो तो फलोत्प्रेक्षा होगी। जैसे—राम के शरीर पर रक्त की बूँदें ऐसी शोभित हैं—(१) मानों लाल पक्षी तमाल वृक्ष पर आनंद से बैठे हैं (हेतूत्प्रेक्षा)। (२) मानों लाल पक्षी तमाल वृक्ष पर सघन छाया के लोभ से आकर बैठे हैं (फलोत्प्रेक्षा)।

कभी-कभी उत्प्रेक्षा में वाचक का प्रयोग नहीं होता, इसे गम्योत्प्रेक्षा कहते हैं।

गम्योत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा वाचक शब्दों का लोप हो।

उदाहरण—(चौपाई)

इनहिं देखि बिधि मन अनुरागा। पटतर-जोग बनावन लागा।
कीन्ह बहुत स्रम अइकि न आए। एहि इरषा बन आनि दुराए॥

यहाँ चतुर्थ चरण में 'मानों' वाचक का लोप है।

---

१ शत्रु के घर में। २ तुर्क (मुसलमान) भी। ३ महादेव।

सूचना—'उत्प्रेक्षा' को अँगरेजी में 'पोइटिकल फैंसी' (Poetical Fancy) कहते हैं।

(१४) अतिशयोक्ति

'जहाँ अलौकिक उक्ति सों, वस्तु-प्रसंसा होय।'

जहाँ लोक-सीमा का उल्लंघन करते हुए प्रस्तुत की प्रशंसा की जाय।

'अतिशयोक्ति' शब्द में 'अतिशय' का अर्थ है 'लोक-सीमा का उल्लंघन'। इसलिए जहाँ कोई ऐसी बात कही जाती है जो लौकिक बात के बाहर हो वहाँ यह अलंकार होता है।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

जेहि बर बाजि राम असवारा।
तेहि सारदउ न बरनइ पारा॥

संसार में यह बात प्रसिद्ध और मान्य है कि शारदा (सरस्वती) सबका वर्णन कर सकती है, पर इसका उल्लंघन करके यहाँ पर उनके द्वारा राम के घोड़े की शोभा का वर्णन न कर सकना कहा गया है।

इसके सात भेद होते हैं—१ रूपकातिशयोक्ति, २ भेदकातिशयोक्ति, ३ संबंधातिशयोक्ति, ४ असंबंधातिशयोक्ति, ५ अक्रमातिशयोक्ति, ६ चपलातिशयोक्ति और ७ अत्यंतातिशयोक्ति।'

(१) रूपकातिशयोक्ति

'जहँ केवल उपमान तें, प्रगट होत उपमेय।'

'जहाँ उपमेय कहे बिना केवल उपमान में ही उपमेय का अभेद दिखाया जाय अर्थात् केवल उपमान के द्वारा ही उपमेय का ज्ञान कराया जाय।

'रूपकातिशयोक्ति' में 'रूपक' शब्द का अर्थ है उपमान द्वारा उपमेय का रूप धारण करना। प्राचीन आचार्यों ने इसका पूरा अर्थ यों

लिखा है—जहाँ उपमान उपमेय को अपने में पचा जाय और उपमान से उपमेय का अभेद होकर केवल उपमान से ही उपमेय का ज्ञान हो जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

राम सीय-सिर सेंदुर देहीं। उपमा कहि न जात कवि केहीं।
अरुन पराग जलज भरि नीके। ससिहि भूष[1] अहि लोभ अमी[2] के।

इस चौपाई में अरुन पराग, जलज (कमल), शशि (चंद्रमा), अहि (सर्प) उपमानों द्वारा ही क्रमशः सिंदूर, (राम की) हथेली, (सीता का) मुख और (राम की) भुजा उपमेयों का ज्ञान कराया गया है।

(२) भेदकातिशयोक्ति

'औरै यों करिकै जहाँ, बरनत सोई बात।'

जहाँ उपमेय की अभिन्नता होने पर भी भिन्नता कही जाय। 'भेदकातिशयोक्ति' में 'भेदक' शब्द का अर्थ है 'भेद करनेवाला'। इस अलंकार में 'और ही' आदि शब्दों द्वारा उपमान से उपमेय को भिन्न कहा जाता है। इस अलंकार के वाचक 'और ही', 'न्यारा' आदि हैं।

उदाहरण—(दोहा)

औरै हँसनि, बिलोकिबौ, औरै वचन उदार।
'तुलसी' ग्राम-बधून के, देखे रह न सँभार॥

इस दोहे में 'औरै' शब्द द्वारा हँसने, देखने और बोलने की भिन्नता कही गई है।

(३) संबंधातिशयोक्ति

'जहँ अयोग्य मैं योग्यता, सब विधि बरनी जाय।'

जहाँ असंबंध में संबंध कहा जाय अर्थात् अयोग्य में भी योग्यता दिखाई जाय।

---

[1] ... करता है। [2] अमृत।
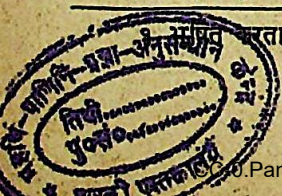
उदाहरण—(अर्द्धाली)

फवि फहरैं अति उच्च निसाना।
तिन महँ अँटकत विबुध-विमाना ॥

इस अर्द्धाली में झंडों को ऊँचाई इतनी बढ़ाकर कही गई है कि उनमें देवताओं के विमान उलझ जाते हैं। यही अयोग्य में योग्यता या असंबंध में संबंध है।

(४) असंबंधातिशयोक्ति

'जहँ अयोग्यता योग्य मैं, सब बिधि बरनी जाय।'

जहाँ संबंध में असंबंध कहा जाय अर्थात् योग्य में अयोग्यता दिखाई जाय।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

अति सुंदर लखि मुख सिय तेरो।
आदर हम न करत ससि केरो ॥

इस अर्द्धाली में आदर करने योग्य चंद्रमा का आदर न करना कहा गया है।

सूचना—जहाँ शेष, शारदा, वेद, गणेश आदि द्वारा शोभा आदि का वर्णन न कर सकने की बात कही जाती है वहाँ भी यही अलंकार होता है। यथा—

जो सुख भा सिय-मातु-मन, देखि राम-बर-बेष।
सो न सकहिं कहि कल्प सत, सहस सारदा सेष ॥

(५) अक्रमातिशयोक्ति

'कारन कारज को जहाँ, होय क्रम-रहित संग।'

जहाँ कारण और कार्य का बिना क्रम के एक साथ वर्णन किया जाय। इसके वाचक 'संग ही', 'साथ ही' आदि हैं।

उदाहरण—(दोहा)

बानासन तें रावरे, बान बिषम रघुनाथ।
दससिर-सिर धर तें छुटे, दोऊ एकहि साथ ॥

यहाँ धनुष से बाणों का और धड़ से सिरों का एक साथ अलग होना कहा गया है।

(६) चपलातिशयोक्ति

'हेतु-ज्ञान ही सों जहाँ, पूरो काज-प्रकास।'

जहाँ कारण के ज्ञान से अर्थात् उसके देखने या सुनने मात्र से कार्य का हो जाना कहा जाय।

'चपलातिशयोक्ति' में 'चपला' शब्द का अर्थ है 'बिजली'। जिस प्रकार बिजली के चमकने और उसकी चमक के देखे जाने में विलंब नहीं होता उसी प्रकार इस अलंकार में कारण के ज्ञान से ही कार्य हो जाता है।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

तब सिव तीसर नैन उघारा।
चितवत काम भयउ जरि छारा॥

यहाँ 'शिव का तृतीय नेत्र खोलना' कारण के ज्ञान से ही कामदेव का जल जाना कार्य हो गया है।

(७) अत्यंतातिशयोक्ति

'होत हेतु पीछे जहाँ, होत प्रथम ही काज।'

जहाँ कारण के पहले ही कार्य हो जाय।

उदाहरण—(दोहा)

राजन् ! राउर[१] नाम-जस, सब अभिमत-दातार[२]।
फल-अनुगामी महिपमनि ! मन-अभिलाष[३] तुम्हार॥

यहाँ पर दूसरी पंक्ति का अर्थ है कि फल पहले मिल जाता है, उसके पाने की अभिलाषा पीछे होती है।

---

१ आपका। २ मनोवांछित देनेवाला। ३ मन की इच्छा फल के पीछे-पीछे चलती है।

सूचना—'अतिशयोक्ति' को अँगरेजी में 'हाइपरबोल' (Hyperbole) कहते हैं।

(१५) दृष्टांत

'पद-समूह जुग धर्म जहँ, जिमि बिंबहि प्रतिबिंब।'

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों तथा उन दोनों के धर्मों में बिंब-प्रतिबिंब-भाव हो।

'दृष्टांत' शब्द का अर्थ 'निश्चय का देखना' है। इस अलंकार में उपमेय-वाक्य कहकर उपमान-वाक्य द्वारा उसका निश्चय कराया जाता है।

उदाहरण—(दोहा)

भरतहिं होइ न राजमद, बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ॥

इस दोहे में पूर्वार्द्ध उपमेय-वाक्य है और उत्तरार्द्ध उपमान-वाक्य। पहले का धर्म 'विधि-हरि-हर-पद पाकर भी राजमद न होना' और दूसरे का 'काँजी की बूँदों से भी न बिगड़ना' है, जो बिंब-प्रतिबिंबवत् कहे हुए हैं।

सूचना—इसका अँगरेजी नाम 'एकजेंप्लीफिकेशन' (Exemplification) है।

(१६) निदर्शना

'भिन्न बस्तु संबद्ध जहँ, उपमा द्वारा होयँ।'

जहाँ दो पदार्थों में भिन्नता होते हुए भी उपमा के द्वारा उनके संबंध की कल्पना की जाय।

'निदर्शना' शब्द का अर्थ है कुछ रचकर दिखाना। इस अलंकार में उपमेय और उपमान दो वाक्यों में संबंध के असंभव होते हुए भी एक के ऊपर दूसरे का आरोप इस प्रकार से किया जाता है जिससे दोनों में समानता स्थापित हो जाती है। इसके तीन भेद होते हैं।

(१) प्रथम निदर्शना—जहाँ जो, सो आदि पदों के द्वारा दो असमान वाक्यों की एकता दिखाई जाय।

उदाहरण—(सवैया)

जुगनू अब भानु के आगे भली बिधि आपनी जोतिन्ह को गुन गैहै।
माखियौ जाइ खगाधिप[1] सों उड़िबे की बड़ी-बड़ी बात चलैहै।
'दास' जबै तुक-जोरनहार, कबिंद उदारन की सरि[2] पैहै।
तौ करतारहु[3] सों औ कुम्हार सों एक दिना झगरो परि जैहै॥

'तुक्कड़ का कवींद्र की समता पाना' प्रस्तुत प्रसंग में उपमेय है। 'जुगनू का भानु के सामने अपनी ज्योति का गुन गाना', 'मक्खी का गरुड़ से उड़ने की बड़ी बड़ी बातें करना' तथा 'कुम्हार का ब्रह्मा से झगड़ा करना' ये तीन वाक्य उपमान हैं। उपमेय-वाक्य से ये तीनों उपमान-वाक्य भिन्न हैं पर इनसे उपमेय-वाक्य की एकता स्थापित की गई है 'जबै' और 'तौ' पदों के द्वारा।

सूचना—कभी कभी 'जो तो' आदि पदों को विना रखे भी ऐसी एकता स्थापित की जाती है—

मीठे बचन उदार के, सोने माँहि सुगंध।

यहाँ 'उदार के मीठे बचन' और 'सोने में सुगंध' दो असम वाक्य हैं जिनमें विना 'जो सो' के ही एकता स्थापित कर दी गई है।

(२) द्वितीय निदर्शना—जहाँ उपमेय के गुण का उपमान में अथवा उपमान के गुण का उपमेय में आरोप किया जाय।

(क) उपमेय के गुण का उपमान में आरोप

जेहि दिन दसन[4]-जोति निरमई[5]।
बहुतै जोति-जोति ओहि भई॥

---

१ गरुड़। २ समता। ३ ब्रह्मा। ४ दाँत। ५ निर्मित की (बनाई)।

रबि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती॥

दंत उपमेय के ज्योति-गुण का आरोप सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, रत्नादि उपमानों में किया गया है।

(ख) उपमान के गुण का उपमेय में आरोप

उदाहरण—(दोहा)

जब कर गहत कमान सर, देत परनि[1] कौं भीति[2]।
भाउसिंह मैं पाइयै, तब अर्जुन की रीति॥

इस दोहे में भाऊसिंह उपमेय में अर्जुन उपमान के गुणों का आरोप किया गया है।

(३) तृतीय निदर्शना—जहाँ अपनी सत् अथवा असत् क्रिया के द्वारा दूसरों को सत् अथवा असत् अर्थ का ज्ञान कराया जाय। इसे सदसदर्थ निदर्शना भी कहते हैं।

(क) सदर्थ

उदाहरण—(दोहा)

दीपक-दीह-प्रकास मैं जार न अंग पतंग।
देखरावत सब नरन कों प्रेम-चरित नवरंग॥

दीपक में पतिंगा जलकर लोगों को प्रेम करने के ढंग (सत्) का ज्ञान कराता है।

(ख) असदर्थ

उदाहरण—(वंशस्थ)

कु-अंगजों की बहु कष्टदायिता
बता रही थीं जन नेत्रवान को।
स्वकंटकों से स्वयमेव सर्वदा
विदारिता हो बदरी-द्रुमावली।

---

१ शत्रुओं को। २ भय।

बेर के पेड़ में काँटों का बाहुल्य लोगों को बुरी संतति का कष्टकारी होना (असत्) बता रहा है ।

सूचना—'निदर्शना' को अँगरेजी में इलस्ट्रेशन (Illustration) कहेंगे ।

(१७) अर्थांतरन्यास

'कह्यो अरथ जहँ ही लियो, और अरथ उल्लेख ।'

जहाँ प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अर्थ द्वारा समर्थन किया जाय ।

'अर्थांतरन्यास' शब्द में 'अर्थांतर' का अर्थ है 'अन्य अर्थ' और 'न्यास' का अर्थ है 'रखना' । इस अलंकार में एक बात के समर्थन के लिए दूसरे अर्थ का प्रयोग होता है ।

उदाहरण—(दोहा)

कारन तें कारज कठिन, होय दोष नहिं मोर ।
कुलिस[1] अस्थि[2] तें उपल[3] तें लोह कराल कठोर ॥

इस दोहे में 'कारण से कार्य का होना' प्रस्तुत अर्थ है । वज्र (जो दधीचि की हड्डी से बना है) के हड्डी से और लोहे के (जो पत्थर से पैदा होता है) पत्थर से अधिक कठोर होने के अप्रस्तुत अर्थ से इसका समर्थन किया गया है ।

इसके दो प्रकार हैं—(१) विशेष-भेद और (२) सामान्य-भेद ।

(१) विशेष-भेद

जहाँ किसी सामान्य अर्थ का समर्थन विशेष अर्थ से किया जाय ।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

राम भंजन बिनु मिटहिं न कामा[4] ।
थल-बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥

---

१ वज्र । २ हड्डी । ३ पत्थर । ४ कामना ।

यहाँ पहला चरण सामान्य-वाक्य है और दूसरा विशेष।

(२) सामान्य-भेद

जहाँ किसी विशेष अर्थ का समर्थन सामान्य अर्थ द्वारा किया जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

अस कहि चला बिभीषन जबहीं। आयुहीन भे निसचर तबहीं।
साधु अवज्ञा[1] तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कइ हानी।

यहाँ विभीषण के लौट जाने से निशाचरों का आयुहीन होना विशेष बात है। इसका समर्थन 'साधुओं के अपमान से तुरत कल्याण की हानि होती है' इस सामान्य बात से किया गया है।

सूचना—(१) दृष्टांत अलंकार और अर्थांतरन्यास में अंतर यह है कि उसमें दो वाक्यों और उनके धर्मों का केवल विंव-प्रतिविंव भाव होता है और साथ ही उसमें सामान्य अथवा विशेष अर्थों का एक दूसरे से समर्थन किया जाता है। अर्थात् दृष्टांत में दोनों वाक्य या तो सामान्य ही होते हैं या विशेष ही। अर्थांतरन्यास में एक सामान्य और दूसरा विशेष होता है।

(२) अर्थांतरन्यास का अँगरेज़ी नाम 'कारोबोरेशन' (Corroboration) है।

(१८) सहोक्ति

'सह सम सब्दन तें जहाँ दुइ वाक्यन संबंध।'

जहाँ 'सह' अर्थ वाले शब्दों के बल से एक शब्द दो अर्थों का बोधक हो जाय।

'सहोक्ति' शब्द का अर्थ है 'सह' भाव की उक्ति। इस अलंकार में सह, संग, साथ आदि शब्दों के द्वारा एक शब्द दो ओर लगता है।

---

१ अपमान

वह शब्द एक ओर प्रधान रूप से और दूसरी ओर गौण रूप से अन्वित होता है।

उदाहरण—(पद)

गहि करतल मुनि-पुलक सहित कौतुकहि उठाइ लियो।
नृपगन-मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहिं दियो।
आकरष्यो सिय-मन समेत हरि, हरष्यो जनक हियो।
भंज्यो भृगुपति-गर्ब सहित, तिहुँ लोक बिमोह कियो॥*

यहाँ प्रथम पंक्ति में 'उठाइ लियो' का संबंध प्रधानतया धनुष से है, पर 'सहित' शब्द के कारण उसका संबंध 'मुनि-पुलक' से भी हो गया है। द्वितीय पंक्ति में 'नमित करि' का संबंध गौण रूप से नृपगण के मुखों से 'समेत' के द्वारा, तृतीय पंक्ति में 'आकरष्यो' का संबंध 'सिय-मन' से गौण रूप से 'समेत' शब्द से और चतुर्थ पंक्ति में 'भंज्यो' का संबंध गौण रूप से 'भृगुपति-गर्व' से 'सहित' पद द्वारा स्थापित किया गया है। इन सब क्रियाओं का प्रधान रूप से संबंध 'धनुष' से है।

सूचना—(१) 'सह' आदि शब्दों द्वारा कोई चमत्कारपूर्ण बात कहनी चाहिए। साधारण वर्णन में यह अलंकार न बनेगा। जैसे—'सीता-लखन सहित रघुराई। चले बनहिं अवधहिं सिर नाई।' में 'सहोक्ति अलंकार' न होगा।

(२) 'सहोक्ति' को अँगरेजी में 'कनेक्टेड डिस्क्रिप्शन' (Connected Description) कहेंगे।

---

*इसका मूल श्लोक इस प्रकार है—

उत्क्षिप्तं सह कौशिकस्य पुलकैः सार्धं मुखैर्नमितं
भूपानां जनकस्य संशयधिया साकं समास्फालितम्।
वैदेह्या मनसा समं तदधुनाकृष्टं ततो भार्गव-
प्रौढाहंकृतिकन्दलेन च समं भग्नं तदैशं धनुः॥

(१९) परिकर

'साभिप्राय बिसेषनहिं परिकर, अँकुर विसेष्य'

जहाँ पर किसी विशेषण का प्रयोग किसी क्रिया के अर्थ की पुष्टि के लिए किया जाय।

'परिकर' शब्द का अर्थ है 'परिवार' अथवा 'उपकरण'। जिस प्रकार छत्र, चामर आदि उपकरणों से राजा की शोभा होती है उसी प्रकार यहाँ प्रयुक्त साभिप्राय विशेषण द्वारा काव्य-चमत्कार बढ़ता है।

उदाहरण—(कवित्त)

मंगलीक-माला गरे हार गज-मोतिन के,
खौर भाल मलय-बिलास अवतारा को।
आनन सुरूप सरवर हास हीरा-हार,
वचन-अमीरस अमंद सुभसारा को।
अरबिंद-नैन अंग-भूषन जवाहिर के,
'लछिराम' जस हिमालय के पसारा को।
सीतल करैंगे मेटि ताप-त्रिभुवन राम,
स्यामघन-बरन बरसि दान-धारा को।

इस कवित्त में 'श्यामघन वर्ण' विशेषण साभिप्राय है क्योंकि 'त्रिभुवन का ताप' दूर कराना है।

सूचना—'परिकर' को अँगरेजी में 'सिग्नीफिकैंट' (Significant) कहेंगे।

(२०) परिकरांकुर

जहाँ किसी क्रिया के अर्थ को सिद्ध करने के लिए साभिप्राय विशेष्य का प्रयोग हो।

'परिकरांकुर' का अर्थ है 'परिकर का अँकुआ'। परिकर में साभिप्राय विशेषण रहता है यहाँ साभिप्राय विशेष्य।

उदाहरण—(सवैया)

लोचन पूरि रहे जल सों प्रभु दूरि तें देखत ही दुख मेट्यो।
सोच भयो सुरनायक[1] के कलपद्रुम के हिय माँझ खखेट्यो[2]।
कंप कुबेर-हिये सरसो, परसे पग जात सुमेरु ससेट्यो[3]।
रंक तें राव भयो तबहीं जबहीं भरि अंक रमापति भेट्यो॥

'रमापति' विशेष्य शब्द साभिप्राय है क्योंकि 'सुदामा को रंक से राजा करने की क्रिया' इससे सिद्ध होती है।

सूचना—(१) कुछ लोग 'परिकरांकुर' को पृथक् अलंकार नहीं मानते। 'परिकर' का भेद मात्र कहते हैं।

(२) अँगरेजी में इसको 'पासिंग सिग्नीफिकेंस' (Passing Significance) कहेंगे।

(२१) अप्रस्तुतप्रशंसा

'जहँ अप्रस्तुत करत है प्रस्तुत को संकेत।'

जहाँ अप्रस्तुत का वर्णन करके प्रस्तुत का बोध कराया जाय।

'अप्रस्तुतप्रशंसा' शब्द में 'अप्रस्तुत' का अर्थ है 'वह बात जो प्रकरण से भिन्न हो' और 'प्रशंसा' का अर्थ है 'वर्णन'।

इसके पाँच प्रकार हैं— (१) कारण के द्वारा कार्य का ज्ञान (कारण-निबंधना), (२) कार्य के द्वारा कारण का ज्ञान (कार्य-निबंधना), (३) विशेष के द्वारा सामान्य का ज्ञान (विशेष-निबंधना), (४) सामान्य के द्वारा विशेष का ज्ञान, (सामान्य-निबंधना) और (५) सदृश के द्वारा सदृश का ज्ञान (सारूप्य-निबंधना या अन्योक्ति)।

(१) कारण-निबंधना—जहाँ अप्रस्तुत कारण के वर्णन से प्रस्तुत कार्य का ज्ञान कराया जाय।

---

१ इंद्र। २ खटका। ३ सिकुड़ा जाता है।

उदाहरण—(दोहा)

लई सुधा सब छीनि विधि, तुव मुख रचिबे काज।
सो अब याही सोच सखि, छीन होत द्विजराज॥

मुख का सौंदर्य कार्य है। 'चंद्रमा से सुधा का छिन जाना' कारण है। कारण का वर्णन करके सौंदर्य कार्य का ज्ञान कराया गया है।

(२) कार्य-निबंधना—जहाँ अप्रस्तुत कार्य के वर्णन से प्रस्तुत-कारण सूचित किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

भृगुकुल-कमल-दिनेस सुनि, जीति सकल संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत है जस-भार॥

परशुराम से राम कहते हैं कि 'आप यश का भार लड़कों पर क्यों दे रहे हैं। लड़कों से भला यह यश का बोझ कैसे उठेगा।' संकेत यह करते हैं कि हम आपको पराजित करके स्वयम् संसार-विजेता के भी विजेता बन जायँ, क्या आपको यह स्वीकार्य है? 'यश' कार्य (अप्रस्तुत) का उल्लेख है और सूचित होता है 'पराजय' कारण (प्रस्तुत)।

(३) विशेष-निबंधना—जहाँ अप्रस्तुत विशेष के वर्णन से प्रस्तुत सामान्य सूचित किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

आप न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन हूँ रोकत फिरैं, 'रहिमन' पेड़ बबूर॥

बबूल (विशेष) अप्रस्तुत का वर्णन है निकम्मे व्यक्ति (सामान्य) प्रस्तुत की ओर संकेत है।

(४) सामान्य-निबंधना—जहाँ अप्रस्तुत सामान्य के कथन द्वारा प्रस्तुत विशेष का ज्ञान कराया जाय।

उदाहरण—(सवैया)

या जग मैं तिन्हैं धन्य गनौ जे सुभाय पराये भले कहँ दौरैं।
आपनो कोऊ भलो करै ताको सदा गुन माने रहैं सब ठौरैं।
दास जू ह्वै जौ सकै तौ करैं बदले उपकार के आपु करोरैं[1]।
काज हितू के लगे तन, प्रान के दान तें नेकु नहीं मन मोरैं॥

अप्रस्तुत परोपकारी की सामान्य गुणावली है। प्रस्तुत कोई विशेष परोपकारी होगा जिसके लिए या जिसके सामने परोपकारार्थ यह रचना पढ़ी जाय।

(५) सारूप्य-निबंधना (अन्योक्ति)—समान अप्रस्तुत द्वारा समान प्रस्तुत का ज्ञान कराया जाय।

उदाहरण—(कुंडलिया)

दानी हौ या जगत मैं एकै तुम मंदार[2]।
दारन दुख दुखियान के अभिमत-फल-दातार।
अभिमत-फल-दातार देवगन सेवैं हित सों।
सकल संपदा सोह छोह किन राखौ चित सों।
बरनै दीनदयाल छाँह तव सुखद बखानी।
तोहि सेइ जौ दीन रहै दुख तौ कस दानी।

अप्रस्तुत मंदार (कल्पवृक्ष) है पर उसके दान के वर्णन द्वारा समान प्रस्तुत उदारचेता का ज्ञान कराया गया है।

सूचना—अप्रस्तुतप्रशंसा को अँगरेजी में 'इन्डाइरेक्ट डिस्क्रिप्शन' (Indirect Description) कहेंगे।

(२२) व्याजस्तुति

'स्तुति मैं निंदा कढ़ै, स्तुति निंदा मैं होय।'

जहाँ निंदा से स्तुति का अथवा स्तुति से निंदा का तात्पर्य हो।

१ करोड़ों। २ कल्पवृक्ष।

'व्याजस्तुति' शब्द का अर्थ है 'बहाने से स्तुति' या 'बहाना रूप स्तुति (निंदा)'। इसी से इस अलंकार में की तो जाती है 'स्तुति या निंदा' पर तात्पर्य उसके ठीक विपरीत होता है।

(१) निंदा के बहाने स्तुति

उदाहरण—(कबित्त)

पापी एक जात हुतौ गंगा के अन्हाइबे कौं,
तासों कहै कोऊ एक अधम अपान मैं[१]।
जाहु जनि पंथी! उत विपति बिसेष होति,
मिलैगो महान कालकूट[२] खानपान मैं।
कहै 'पदमाकर' भुजंगन बँधैंगे अंग,
संग मैं सु भारी भूत चलैंगे मसान मैं।
कम्मर कसैंगे गजखाल ततकाल, बिन
अंबर[३] फिरैगो तू दिगंबर[४] दिसान मैं॥

इस कवित्त में 'स्नान करनेवाले को जहर खाने को मिलेगा' आदि बातें कहकर गंगाजी की निंदा की गई है, पर 'वे महादेव के समान बना देंगी' यह स्तुति निकलती है।

(२) स्तुति के बहाने निंदा

उदाहरण—(चौपाई)

धन्य कीस[५] जो निज-प्रभु-काजा। जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा।
नाचि कूदि करि लोग रिझाई[६]। पति-हित करत करम-निपुनाई।

यहाँ स्वामी के लिए नाचने कूदनेवाले बंदरों की स्तुति तो की गई है, पर इसमें कहनेवाले का तात्पर्य उनकी निंदा करना है।

---

१ अभिमानपूर्वक। २ विष। ३ वस्त्र। ४ नग्न ५ बंदर। ६ प्रसन्न करके।

सूचना—इसके पहले भेद को अँगरेजी में 'आर्टफुल प्रेज' (Artful Praise) और दूसरे भेद को 'आर्टफुल ब्लेम' (Artful Blame) कहेंगे। कुछ लोग दूसरे भेद को अँगरेजी का 'आयरनी' (Irony) मानते हैं।

(२३) विरोधाभास

'देखन मैं जु बिरोध है, पै बिरोध आभास'

जहाँ वस्तुतः विरोध न होकर विरोध का आभास मात्र हो। यह विरोध जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य इन चार में ही हो सकता है।* प्रस्तार करने से इसमें दस प्रकार होंगे—

(१) जाति का जाति से विरोध,
(२) जाति का गुण से विरोध,
(३) जाति का क्रिया से विरोध,
(४) जाति का द्रव्य से विरोध,
(५) गुण का गुण से विरोध,
(६) गुण का क्रिया से विरोध,

---

* जाति=सामान्य पदार्थ ; जैसे मनुष्य, गौ, वृक्ष आदि। गुण= जाति की विशेषता, जैसे साँवला (मनुष्य), धवरी (गाय), सूखा (वृक्ष) आदि। द्रव्य=विशेष पदार्थ, एक व्यक्ति, जैसे रामचंद्र, कामधेनु, कल्पतरु आदि। क्रिया=पदार्थ का साध्य धर्म, जैसे चलना, दौड़ना, उगना आदि। साध्य धर्म=किसी क्रिया को सिद्ध करने के लिए कई छोटे मोटे कार्य आगे-पीछे करने पड़ते हैं। इनके पूरे उतरने पर ही क्रिया की सिद्धि आश्रित रहती है। ये कार्य देखने में अनेक होने पर भी एक ही प्रधान क्रिया के साधक होते हैं। अतएव इन सबसे सिद्ध होने-वाली क्रिया को 'वस्तु का साध्य धर्म' कहते हैं। जैसे 'पकाना' 'क्रिया के लिए आग जलाना, बेलना, सेंकना आदि कई कार्य करने पड़ते हैं। पकाना साध्य धर्म है।

(७) गुण का द्रव्य से विरोध,
(८) क्रिया का क्रिया से विरोध,
(९) क्रिया का द्रव्य से विरोध, और
(१०) द्रव्य का द्रव्य से विरोध।

(१) जाति का विरोध जाति से

उदाहरण—(दोहा)

सुधाधाम ह्वै करत है, तू बिष ही को काज।
अहै कसाई के सरिस, तू ह्वै कै द्विजराज॥

कसाई जाति है उसका द्विजराज (ब्राह्मण) जाति से विरोध है। द्विजराज का अर्थ चंद्रमा करने पर विरोध का परिहार हो जाता है। कोई विरही चंद्रमा के प्रति जली-कटी कह रहा है। पहली पंक्ति में सुधाधाम गुण से विष जाति का भी विरोध है। सुधाधाम चंद्रमा का विशेषण होने से परिहार होगा।

(२) जाति का विरोध गुण से

उदाहरण—(दोहा)

कहत कृपामय सब सदा, लीन्हें रहत कटार।
तू असील साहब तऊ, सोहत सील-भँडार॥

जो कटार लिए रहेगा वह हिंसा करनेवाला होगा, 'कृपामय' कैसे होगा। पर वर्णन राजा का है जो कमर में कटार बाँधे रहता है। कृपामय गुण से कटार जाति का विरोध है। दूसरी पंक्ति में असील (शील रहित) गुण का शील-भांडार गुण से विरोध है। असील का अर्थ असल या सच्चा होता है। इससे विरोध का परिहार हो जाता है, उसका आभास मात्र रह जाता है।

(३) जाति का विरोध क्रिया से

उदाहरण—(सवैया)

श्रीसरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।

भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेत[1] लखे कुनबा[2] नृप सारे।
साहितनै तव कोप-कृसानु ते वैरि गरे सब पानिप वारे।
एक अचंभव होत बड़ो तिन ओंठ गहे अरि जात न जारे॥

कृशानु (अग्नि) जाति से 'तृण न जलना' क्रिया का विरोध है। 'तिन ओंठ गहे' (मुँह में तृण लिए हुए) का अर्थ 'दीनता दिखाना' होने से विरोध का परिहार हो जाता है। प्रथम चरण में श्वेत से काला होने में गुण से गुण का विरोध है। ऐसे ही द्वितीय चरण में अरुण (लाल) में श्वेत (संकेत) होने में भी गुण से गुण का ही विरोध है। तृतीय चरण में कृशानु (अग्नि) का पानिप (पानी) से विरोध है—जाति का जाति से।

(४) जाति का विरोध द्रव्य से

उदाहरण—(दोहा)

सीता-नयन चकोर सखि, रवि-बंसी रघुनाथ।
रामचंद्र सिय-कमल-मुख भलो बनो है साथ॥

चकोर जाति का सूर्य द्रव्य से और कमल जाति का चंद्र द्रव्य से विरोध है।

(५) गुण का विरोध गुण से

उदाहरण—(तोटक)

जिनको सु अनुग्रह वृद्धि करै।
तिनको किमि निग्रह चित्त परै।
जिनके जग अच्छत सीस धरै।
तिनको तन सच्छत कौन करै॥

अक्षत (घावरहित) गुण का सक्षत (घावसहित) गुण से विरोध है। अक्षत का अर्थ चावल होने से विरोध का परिहार हो जाता है।

---

१ सफ़ेद, श्वेत। २ कुटुंब।

(६) गुण का विरोध क्रिया से

उदाहरण— (दोहा)

मोद हिये यौं होत है तुव खीझे अनतोल।
मोकों निपट मिठात है, यह तेरो कटु बोल ॥

मोद गुण का खीझना क्रिया से और कटु गुण का मिठाना क्रिया से विरोध है। प्रेम में ऐसा होता ही है इसीसे परिहार हो जाता है।

(७) गुण का विरोध द्रव्य से

उदाहरण—(दोहा)

बिषमय यह गोदावरी अमृतनि के फल देति।
केसव जीवनहार को दुख असेष हरि लेति ॥

विषमय (जहरीली) गुण का अमृत द्रव्य से विरोध है। विष का अर्थ जल और अमृत का अर्थ देवता होने से विरोध का परिहार है। दूसरी पंक्ति में 'जीवनहार' गुण का 'दुख हर लेना' क्रिया से विरोध है। जीवन का अर्थ जल होने से परिहार है।

(८) क्रिया का विरोध क्रिया से

उदाहरण—(दोहा)

बैन सुन्यो जब तें मधुर तब तें सुनत न बैन।
नैन लगे जब तें लखो तब तें लगत न नैन ॥

'सुनना' क्रिया का 'न सुनना' क्रिया से पहली पंक्ति में और 'लगना' क्रिया का 'न लगना' क्रिया से दूसरी पंक्ति में विरोध है। 'न सुनना' का अर्थ (दूसरे की बातों पर) 'ध्यान न देना' और 'न लगना' का अर्थ 'आँख न लगना', 'नींद न आना' अर्थ होने से विरोध का परिहार है।

(९) क्रिया का विरोध द्रव्य से

उदाहरण—(दोहा)

अब न प्रान राखत बनत बेगि पधारहु पीय।
चंद जरावत आगि लौं काटत कमलहु हीय ॥

'चंद्र' द्रव्य का 'जलाना' क्रिया से विरोध है। वियोग की वाणी होने से परिहार है। 'कमल' जाति का 'काटना' क्रिया से भी विरोध है।

(१०) द्रव्य का विरोध द्रव्य से

उदाहरण—(दोहा)

चंदन हालाहल भयो चंद भयो है सूर।
फूल गुलाब त्रिसूल सो, बाड़व भयो कपूर॥

'चंदन' द्रव्य का 'हालाहल' (समुद्र-मंथन से निकला विष) द्रव्य से विरोध है। 'हालाहल' का अर्थ कष्ट देनेवाला होने से और वियोग की अवस्था के कारण विरोध का परिहार है। इसी प्रकार अन्य तीनों चरणों में भी यही विरोध है।

सूचना—(१) 'विरोधाभास' को अंगरेजी में 'ऐंटिथीसिस' (Antithesis) कहेंगे।

(२) हिंदी में आधुनिक युग की वह कविता जो 'छायावाद' के नाम से प्रचलित है विरोधाभास का बहुत प्रयोग करती है। उदाहरण के लिए 'प्रसाद' की ये पंक्तियाँ देखिए—

शीतल ज्वाला जलती है ईंधन होता दृगजल का।
यह व्यर्थ श्वास चल चलकर करती है काम अनिल का॥

'शीतल' और 'ज्वाला' में गुण से जाति का विरोध है। शीतल का अर्थ मंद करने से परिहार हो जाता है। 'ईंधन' और 'जल' में जाति से जाति का विरोध है। 'ईंधन' का अर्थ वृद्धि करनेवाला होने से परिहार हो जाता है।

(२४) विभावना

'जहँ कारन अरु कार्य को, बर्नन होय विचित्र।'

जहाँ कारण और कार्य के संबंध में चमत्कारपूर्ण कल्पना की जाय।

'विभावना' शब्द का अर्थ है 'विशेष प्रकार की कल्पना'। इस अलंकार में कारण और कार्य के संबंध में चमत्कारिक कल्पना की जाती है।

उदाहरण—(दोहा)

सुनत लखत स्रुति नैन बिन, रसना[1] बिन रस लेत।
बास नासिका बिन लहै, परसै बिना निकेत[2]॥

यहाँ श्रुति (कान) आदि कारणों के बिना सुनना आदि कार्यों की चमत्कारपूर्ण कल्पना की गई है।

इसके छह प्रकार होते हैं।

(१) प्रथम विभावना

'बिना हेतु जहँ बरनिये, प्रगट होत है काज।'
जहाँ कारण के अभाव में भी कार्य हो जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना
आनन[3] रहित सकल रस-भोगी। बिनु बानी[4] बकता बड़ जोगी।

इस चौपाई में 'पद' आदि कारणों के अभाव में भी 'चलना' आदि कार्यों का होना कहा गया है।

(२) द्वितीय विभावना

'जहाँ हेतु पूरन नहीं, उपजत है पै काज।'
जहाँ अपूर्ण कारण से ही कार्य उत्पन्न हो जाय।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे।
सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥

यहाँ समस्त भुवनों को अपने वश में करने के लिए फूल के धनुष-बाण अपूर्ण कारण हैं।

---

१ जीभ। २ घर, स्थान। ३ मुख। ४ बाणी।

(३) तृतीय विभावना

'कारन प्रतिबंधक रहै, होय काज की सिद्धि ।'

जहाँ कारण का प्रतिबंध करनेवाली वस्तु के होते हुए भी कार्य हो जाय ।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

रखवारे हति बिपिन उजारा ।
देखत तोहिं अछय[1] जेइ मारा ॥

यहाँ 'रक्षक' प्रतिबंधक के होते हुए भी वाटिका उजाड़ना कहा गया है ।

(४) चतुर्थ विभावना

'जहँ अहेतु तें होति है, कारज की उतपत्ति ।'

जहाँ अहेतु (जो वास्तविक कारण नहीं है उस) से कार्य की उत्पत्ति हो ।

उदाहरण—(दोहा)

हँसत बाल के बदन मैं, यों छबि कछू अतूल[2] ।
फूली चंपक बेलि[3] तें, झरत चमेली फूल ॥

इस दोहे में 'चंपक-लता से चमेली के फूलों का झड़ना' अहेतु से कार्योत्पत्ति होना है ।

(५) पंचम विभावना

'कारन तें उपजै जहाँ, कारज परम विरुद्ध ।'

जहाँ विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति हो ।

---

१ अक्षयकुमार । २ जिसकी समता न हो, अनुपम । ३ चंपे की लता (स्त्री) ।

उदाहरण—(कबित्त)

ता दिन अखिल खलभलैं खल खलक[1] मैं,
जा दिन सिवाजी गाजी[2] नेक करखत हैं।
सुनत नगारन अगार[3] तजि अरिन की,
दारगन[4] भाजत न बार[5] परखत हैं।
छूटे बार[6] बार[7] छूटे बारन तें लाल[8] देखि,
'भूषन' सुकबि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होहिं वैरिन के झुंडन मैं,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं॥

यहाँ चौथे चरण में बादलों से आग बरसना विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति कही गई है।

(६) षष्ठ विभावना

'जहाँ काज तें हेतु को, बरनत प्रगट प्रकास।'

जहाँ कार्य से कारण की उत्पत्ति कही जाय।

उदाहरण—(दोहा)

भयो सिंधु तें बिधु[9] सुकबि, बरनत बिना विचार।
उपज्यौ तुव मुख-इंदु तें, प्रेम-पयोधि अपार॥

इस दोहे में इंदु (चंद्र) कार्य से पयोधि (समुद्र) कारण की उत्पत्ति कही गई है।

सूचना—'विभावना' को अँगरेजी में 'पिक्यूलियर कॉजेशन' (Peculiar Causation) कहेंगे।

(२५) असंगति

'कारन कहुँ कारज कहूँ देस काल को बीच।'

जहाँ कार्य-कारण के नियत संबंध का परित्याग दिखलाया जाय और उसमें विरोध का आभास हो।

---

१ पृथ्वी। २ धर्मयुद्ध-वीर। ३ महल। ४ स्त्रियाँ। ५ दिन (मुहूर्त)। ६ द्वार (घर-बार)। ७ वाल (केश)। ८ रत्न। ९ चंद्रमा।

'असंगति' का अर्थ है 'नियत संबंध का त्याग'। इस अलंकार में कार्य-कारण के नियत संबंध का उलट-फेर दिखाया जाता है।

इसके तीन भेद हैं—

(१) प्रथम—जहाँ कारण और कार्य की भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थिति कही जाय।

उदाहरण—(कबित्त)

राजभार रजभार लाजभार भूमिभार,
भवभार जयभार नीके ही अटतु हैं।
प्रेमभार पनभार केसव संपत्तिभार,
पतिभारजुत[1] अति जुद्धनि जुटतु हैं।
दानभार मानभार सकल सयानभार,
भोगभार भागभार घटना घटतु हैं।
एते भार फूल-सम राजैं राजाराम-सिर,
तेहि दुख सत्रुन के सीरस[2] फटतु हैं॥

राज आदि के भार हैं तो राजाराम के सिर, पर बोझ से सिर फटता है शत्रुओं का।

सूचना—विरोधाभास में भिन्न-भिन्न स्थलों पर रहनेवाले पदार्थों की स्थिति एक स्थान पर कही जाती है और प्रथम असंगति में एक स्थान में रहनेवाली वस्तुओं को भिन्न भिन्न स्थानों पर कहा जाता है।

(२) द्वितीय—जो कार्य जहाँ करना है वहाँ न करके अन्यत्र करना।

उदाहरण—(सोरठा)

मैं देख्यौं बन[3] न्हात रामचंद्र तुव अरि-तियन्ह।
कटितट पहिरे पात दृग कंकन[4] कर मैं तिलक[5]॥

१ प्रतिष्ठा। २ शीर्ष, मस्तक। ३ जंगल; जल। ४ हाथ का एक गहना; कं = जल + कण = अश्रु। ५ टीका; तिल + क = जल (मृत पतियों को तिलांजलि देती हैं)।

नेत्रों में कंकण और कर में तिलक अनुपयुक्त स्थान की योजना है।

(३) तृतीय—जिस कार्य के करने में लगे उसके विरुद्ध कार्य कर बैठे।

उदाहरण—(सवैया)

काज महा रितुराज बली के ए हैं बनि आवत हैं लखते हीं।
जात कह्यो न कहा कहिये 'रघुनाथ' कहै रसना एक एहीं।
साल[1] तमाल रसालहिं आदि दै जेतिक वृच्छलता बन जेहीं।
नौ-दल कीबे को कीन्हो विचार तौ कै पतझार दियौ पहिलेहीं॥

नवदल (नए पत्ते) निकालने के लिए उद्यत होने पर पतझड़ कर देना विरुद्ध कार्य कर डालना है।

सूचना—'असंगति' को अँगरेज़ी में 'डिस्कनेक्शन' (Disconnection) कहेंगे।

(२६) व्यतिरेक

'है जहँ बर्न्य अबर्न्य मैं, कछु बिसेष को ज्ञान।'

जहाँ उपमेय के उत्कर्ष अथवा उपमान के अपकर्ष द्वारा उपमेय के गुणाधिक्य का वर्णन हो।

'व्यतिरेक' शब्द में 'वि' का अर्थ है 'विशेषता' अर्थात् असाधारण धर्म और 'अतिरेक' का अर्थ है 'पृथक् भाव'। इसलिए पूरे शब्द का अर्थ हुआ 'दूसरे से पृथक् करनेवाला असाधारण धर्म'। इस अलंकार में उपमेय के उत्कर्ष अथवा उपमान के अपकर्ष द्वारा उपमेय को असाधारण धर्मवाला बतला कर उसे उपमान से पृथक् सिद्ध करते हैं।

(१) उपमेय का उत्कर्ष

उदाहरण—(चौपाई)

(१) संत-हृदय नवनीत-समाना। कहा कविन पै कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर-दुख-द्रवहिं सो संत पुनीता॥

---

१ एक वृक्ष।

इस चौपाई में 'संत-हृदय' उपमेय में नवनीत (मक्खन) उपमान से 'पर के ताप' द्वारा द्रवित होने की अधिकता दिखाई गई है।

(२) प्रगट तीनहूँ लोक मैं, अचल प्रभा करि थाप।
जीत्यौ 'दास' दिवाकरहिं श्रीरघुबीर-प्रताप॥

इस दोहे में राम-प्रताप उपमेय में सूर्य उपमान से 'तीनों लोकों में प्रकाशित होने और अचल प्रभा करने' की अधिकता दिखाई गई है।

(२) उपमान का अपकर्ष

उदाहरण—(दोहा)

जन्म सिंधु पुनि बंधु बिष, दिन मलीन सकलंक।
सिय-मुख-समता पाव किमि, चंद बापुरो[1] रंक॥

इस दोहे में चंद्रमा उपमान में खारे समुद्र में जन्म लेने, विष का भाई होने, दिन में मलीन रहने और कलंक धारण करने की न्यूनता दिखाकर सीता के मुख उपमेय का गुणाधिक्य बतलाया गया है।

सूचना—'व्यतिरेक' को अँगरेजी में 'डिस्सिमिलीच्यूड या कंट्रास्ट' (Dissimilitude or Contrast) कह सकते हैं।

(२७) यथासंख्य

'जहाँ बस्तु-संबंध को क्रम सों बर्नन होय।'

जहाँ प्रथम कही हुई वस्तुओं के क्रम का निर्वाह उनके संबंध में आगे कही जानेवाली वस्तुओं के साथ अंत तक निभाया जाय।

'यथासंख्य' का अर्थ है 'संख्याओं का क्रम' अर्थात् जितनी वस्तुओं का वर्णन पहले जिस क्रम से हुआ है आगे चलकर उनसे संबद्ध वस्तुओं का वर्णन भी उसी क्रम से हो।

---

१ बेचारा।

उदाहरण—(छप्पय)

आनन[1] वेनी[2] नैन[3] वैन[4] पुनि दसन[5] सुकटि[6] गति[7] ।
ससि सर्पिनि मृग पिक[8] अनार केहरि[9] करिनिन[10] पति ।
पुरन[11] खिझत[12] जक[13] तरुन पक्क बरपंच[14] पुष्टबल ।
सरद पताल बिछोह बाग तरु गिरि बनकज्जल ।
निसि संनिवेस सावक[15] चुवत[16] बिगस[17] प्रसूती[18] मदझरत।
'पृथिराज' भनत बंसी वजत अस बनिता बन-बन फिरत ॥

प्रथम चरण में आनन आदि सात पदार्थ हैं । दूसरे चरण में उनके उपमानों का वर्णन उसी क्रम से है । तीसरे में उनके स्वरूप का भी क्रम वही है । चौथे में उनकी देशस्थिति का उल्लेख क्रमशः है । पाँचवें में उनकी अवस्था-स्थिति का वर्णन भी उसी क्रम से है ।

सूचना—अँगरेजी में 'यथासंख्य' को 'रिलेटिव आर्डर' (Relative Order) कहेंगे ।

(२८) परिसंख्या

'जहँ निषेध करि बस्तु को थापै थल में अन्य ।'

जहाँ किसी वस्तु का एक स्थान से निषेध करके उसका दूसरे स्थान में स्थापन हो ।

'परिसंख्या' का अर्थ है 'गणना का वर्णन' । इसमें एक वस्तु की अन्य स्थानों में स्थिति का निषेध करके उसकी स्थापना एक स्थान में की जाती है ।

---

१ मुख । २ चोटी । ३ नेत्र । ४ वचन । ५ दाँत । ६ कमर । ७ चाल । ८ कोयल । ९ सिंहिनी । १० हथिनियों की स्वामिनी । ११ पूर्ण । १२ क्रुद्ध । १३ चकपकाया हुआ । १४ समूह में श्रेष्ठ । १५ बच्चा । १६ मदमत्त । १७ फटा हुआ । १८ ब्याई हुई ।

उदाहरण—(दोहा)

अति चंचल जहँ चलदलै विधवा बनी न नारि।
मन मोहो ऋषिराज को अद्‌भुत रूप निहारि॥

चंचलता का अन्यत्र से वर्जन करके उसकी स्थापना चलदल (पीपल) में की गई है। इसी प्रकार विधवापन का अन्यत्र से वर्जन उसकी स्थापना 'वनी' (वाटिका) में करने के लिए है। 'वनी' 'विधवा'—धव की लता से रहित—है।

सूचना—(१) परिसंख्या को अँगरेजी में 'स्पेशल मेन्शन' (Special Mention) कहेंगे।

(२) निषेध कहीं शब्दों द्वारा स्पष्ट कथित रहता है और कहीं उसकी प्रतीति अर्थ से होती है। 'अति चंचल जहँ चलदलै' में निषेध आर्थ है और 'विधवा वनी न नारि' में शाब्द।

(३) यह अलंकार प्रश्नयुक्त भी होता है।—

क्या आराध्य ? सुकृत सदा, सेव्य ? शास्त्र-शुचि-ज्ञान।
प्राप्य क्या कहो ? परमपद, ध्येय कौन ? भगवान॥

(२९) मुद्रा

'प्रकृत अर्थ के पदन तें सूचित औरौ अर्थ।'

प्रस्तुत अर्थ को प्रकट करनेवाले शब्दों से जहाँ कोई दूसरा सूचनीय अर्थ प्रकट हो।

'मुद्रा' शब्द का अर्थ है चिह्न। इसमें प्रकृत अर्थ में सूचनीय अर्थ के चिह्न पड़े रहते हैं।

उदाहरण—(प्रसाद)

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन[1] में आँसू बनकर वह आज बरसने आई॥

---

[1] बुरा दिन; बदली का दिन (मेघाच्छन्ने हि दुर्दिनम्)।

प्रकृत अर्थ है विरह का वर्णन। पर घन, छाई, दुर्दिन और बरसने आई द्वारा वर्षा का संकेत किया गया है।

सूचना—मुद्रा को अँगरेजी में 'साइन' (Sign) कह सकते हैं।

(३०) तद्गुण

'त्यागि आपनो गुन जहाँ गुन दूजे को लेय।'

जहाँ अपना गुण त्याग कर किसी उत्कट गुणवाले समीपस्थ पदार्थ का गुण ग्रहण किया जाय।

'तद्गुण' का अर्थ है 'उसका गुण'। इसमें एक वस्तु दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण करती है।

उदाहरण—(बरवै)

सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत।
हार-बेलि[1] पहिरावउँ, चंपक होत॥

बेले का हार (उज्ज्वल) सीता जी के अंग के रंग से चंपक (पीला) हो गया।

सूचना—(१) कुछ लोग केवल रंग-ग्रहण करने में ही तद्गुण मानते हैं, पर गुण से अन्य गुणों (रूप, रस और गंध) का भी ग्रहण होता है—तद्गुणातद्गुणयो गुणशब्दो रूपरसगन्धादिगुणवाची (कुवलयानंद)।

(२) जिस वस्तु का गुण गृहीत होता है और जो वस्तु गुण ग्रहण करती है उनमें अंगांगी भाव होता है। पहली वस्तु अंगी और दूसरी अंग होती है।

(३) 'तद्गुण' को अँगरेजी में 'बारोवर' (Borrower) कहेंगे।

---

१ बेले का हार।

(३१) मीलित

'वस्तु सदृस में वस्तु मिलि होवै जहाँ अभेद ।'

जहाँ उत्कट धर्मवाली वस्तु में तदृश वस्तु छिप जाय और उनका भेद न जाना जाय ।

उदाहरण—(कवित्त)

इंद्र निज हेरत फिरत गज-इंद्र[1] अरु,
इंद्र को अनुज[2] हेरै दुगध-नदीस[3] कों ।
'भूषन' भनत सुर-सरिता[4] कों हंस हेरैं,
बिधि हेरैं हंस कों चकोर रजनीस[5] कों ।
साहितनै सरजा यौं करनी करी है तैं जु,
होत है अचंभो देव कोरियौ तैंतीस कों ।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने[6] निज
गिरि[7] कों गिरीस हेरैं, गिरिजा गिरीस कों ॥

शिवाजी के श्वेत यश में ऐरावत आदि श्वेत वर्णवाले पदार्थ छिप गए हैं ।

सूचना—अँगरेजी में मीलित को 'लॉस्ट' (Lost) कहेंगे ।

(३२) उन्मीलित

'वस्तु सदृस में वस्तु मिलि प्रगटै काहूँ हेत ।'

जहाँ सादृश्य के कारण एक वस्तु के दूसरी में विलीन हो जाने पर भी किसी हेतु से भेद का ज्ञान हो जाय ।

उदाहरण—(बरवै)

चंपक-हरवा अँग मिलि, अधिक सोहाय ।
जानि परै सिय-हियरे, जब कुँभिलाय ॥

चंपक-हार कुँभलाया तो सीता के अंग से उसका भेद ज्ञात हो गया ।

---

१ ऐरावत । २ विष्णु । ३ क्षीरसागर । ४ गंगा । ५ चंद्रमा । ६ खो गए । ७ कैलास ।

सूचना—अँगरेजी में इसे 'डिस्कवर्ड' (Discovered) कहेंगे।

(३३) स्वभावोक्ति

'गुन-स्वभाव वा जाति को तद्वत् बर्नन होय।'

जहाँ किसी के जाति, क्रिया, गुण आदि स्वभाव का यथावत् वर्णन हो।

'स्वभावोक्ति' का अर्थ है 'स्वभाव के संबंध में उक्ति' (कथन)। बच्चों, पशुओं आदि के स्वभाव का यथावत् वर्णन करना।

उदाहरण—(सवैया)

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं।
कबहूँ रिसियाइ कहैं हठ कै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मंदिर में बिहरैं।

सूचना—कुछ लोगों के विचार से बच्चों, पशुओं आदि के स्वभाव का यथावत् वर्णन अलंकार का विषय नहीं, अलंकार वर्णन की शैली है। वर्ण्य वस्तु का निर्देश अथवा उसकी स्वाभाविक क्रिया का निरूपण शैली के अंतर्गत नहीं आ सकता—

अलंकारकृतां येषां स्वभावोक्तिरलंकृतिः
अलंकार्यतया तेषां किमन्यदवतिष्ठते।

—वक्रोक्तिजीवित।

(३४) अत्युक्ति

'योग्य व्यक्ति की योग्यता, अति करि बरनी जाय।

जहाँ रोचकता के लिए किसी का बहुत बढ़ाकर वर्णन किया जाय।

'अत्युक्ति' शब्द का अर्थ है 'अतिपूर्ण कथन'। यह कथन इतना बढ़ा होता है कि मिथ्या भासने लगता है। अत्युक्ति सभी प्रकार की हो सकती है, पर प्रायः शूरता, उदारता और सुंदरता की ही अत्युक्ति रीति-

ग्रंथों में पाई जाती है। संपत्ति की अत्युक्ति का तो अलग अलंकार (उदात्त) ही है। यहाँ पर केवल शूरता और उदारता की अत्युक्ति के उदाहरण दिए जाते हैं।

(१) शौर्यात्युक्ति

उदाहरण—(कवित्त)

साजि चतुरंग सैन अंग में उमंग धरि,
सरजा[1] सिवाजी जंग[2] जीतन चलत है।
'भूषन' भनत नाद विहद[3] नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन[4] के रलत[5] है।
ऐल फैल[6] खैल भैल[7] खलक[8] में गैल-गैल
गज़न की ठेल-पेल सैल उसलत[9] है।
तारा सो तरनि[10] धूरि-धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार[11] यों लहत है॥

यहाँ पर हाथियों के मद से नदी बहना, पहाड़ों का उखड़-पखड़ जाना, धूल उड़ने से सूर्य का तारे के समान दिखाई देना और समुद्र का थाली पर रखे पारे की तरह हिलना ये मिथ्यापूर्ण वर्णन शूरता को बढ़ाकर दिखाने के लिए किए गए हैं।

(२) औदार्यात्युक्ति

उदाहरण—(कवित्त)

संपति सुमेर की कुबेर की जौ पावै ताहि,
तुरत लुटावत विलंब उर धारै ना।

---

१ शिवाजी की उपाधि (शरजाह)। २ युद्ध। ३ बेहद, अत्यधिक। ४ (गजवर) श्रेष्ठ हाथी। ५ वह चलते हैं। ६ समूह (सेना) के फैलने से। ७ खलभली। ८ संसार। ९ पहाड़ उखड़ जाते हैं। १० सूर्य। ११ समुद्र।

कहै 'पद्माकर' सु हेम[1] हय[2] हाथिन के,
हलके[3] हजारन के बितरि[4] विचारै ना।
गज-गंज-बक्स[5] महीप रघुनाथ राव,
याहि गज-धोखें कहूँ काहू देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,[6]
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना॥

यहाँ पर भी पार्वती के गणेश को गोद से न उतारने का कारण राजा का हाथी के धोखे उन्हें भी दान कर देना बताया गया है, जो मिथ्यापूर्ण है।

सूचना—(१) जहाँ पर कहा जाता है कि 'डर को भी डर लगता है' 'लज्जा को भी लज्जा आती है', 'क्रोध को भी क्रोध आ गया' आदि वहाँ भी अत्युक्ति ही समझनी चाहिए।

(२) 'अत्युक्ति' को अँगरेजी में 'एक्जैजेरेशन' (Exaggeration) कहते हैं।

---

१ सोना। २ घोड़ा। ३ समूह। ४ विभाजित करना। ५ हाथियों का समूह दान करनेवाले। ६ पार्वती गणेश की देख-भाल कर रही हैं।

चतुर्थ प्रकाश

गुण-दोष

गुण

काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए उसमें कुछ गुण रखे जाते हैं। अलंकारों के द्वारा काव्य की बाहरी शोभा बढ़ती है, पर गुण के द्वारा काव्य में आंतरिक सुंदरता आती है। इसलिए यदि कविता में अलंकार न भी हों तो भी काम चल सकता है, पर गुणों के न रहने से कविता किसी काम की न रह जायगी। वस्तुतः गुण आंतरिक भावों के पोषक होकर कविता में आते हैं। मान लीजिए हम किसी से प्रेमपूर्ण बातें कर रहे हैं, उस समय हम कठोर शब्दों का व्यवहार नहीं करेंगे; 'मीठी-मीठी' बातें करेंगे। इसी प्रकार जब हम किसी के ऊपर क्रुद्ध होंगे तो उससे 'मीठी-मीठी' बातें न करके स्वभावतः 'कड़े शब्दों' का व्यवहार करेंगे। इसी प्रकार यदि हम बिना किसी प्रकार का प्रयत्न किए परस्पर बातचीत करते हैं तो 'सीधे सादे' शब्दों का व्यवहार करते हैं। लेख लिखते समय या व्याख्यान देते समय चाहे हम शब्दों को ढूँढ़-ढूँढ़कर प्रयुक्त करें, पर बात-चीत करते समय हम इस फेर में नहीं पड़ते। मुख्यतः इन्हीं तीन बातों का ध्यान करके काव्य के गुणों को भली भाँति हृदयंगम किया जा सकता है।

जैसा हम पहले कह चुके हैं, 'रस' काव्य की आत्मा है, इसलिए गुणों का प्रयोग भी इन्हीं रसों को ध्यान में रखकर किया जाता है। जितने कोमल भावोंवाले रस हैं उनमें 'मधुर' शब्दों का प्रयोग करके उनकी कोमलता सुरक्षित रखी जाती है। इसी प्रकार

जितने रस उग्र-भावोंवाले हैं उनमें 'कठोर' शब्द उपयोग में लाए जाते हैं और उनकी उग्रता का ठीक-ठीक प्रदर्शन किया जाता है। इसके अतिरिक्त हम पहले यह भी कह आए हैं कि कविता के द्वारा वस्तुतः अपने हृदय का भाव दूसरों पर अभिव्यक्त किया जाता है, इसलिए यदि हम कविता में ऐसे शब्दों का प्रयोग कर दें जो अप्रचलित हैं तो कविता में क्लिष्टता आ जायगी और कविता का वास्तविक उद्देश्य सुरक्षित न रह सकेगा। जिस कविता को हम स्वयं ही करें और स्वयं ही समझें उसके करने से संसार का क्या लाभ? इसलिये कविता में सरल, सीधे-सादे बहुप्रचलित शब्दों का ही अधिकांश में प्रयोग होना चाहिए, इससे उसकी रोचकता बढ़ती है। इन बातों का विचार करके तीन गुणों का विधान किया गया है। इनके नाम हैं—(१) माधुर्य, (२) ओज और (३) प्रसाद।

(१) माधुर्य

जहाँ ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म वर्णों द्वारा, ङ, ञ, ण, न, म से युक्त और अनुस्वारवाले अक्षरों की अधिकता से, रेफ और लंबे समासों को त्यागकर छोटे-छोटे समासों के व्यवहार से मधुर रचना की गई हो वहाँ 'माधुर्य' गुण माना जाता है। इस गुण का प्रयोग शृंगार, करुणा और शांत रसों में विशेष रूप से और हास्य एवं अद्भुत में सामान्यतया आवश्यक है।

उदाहरण—(कवित्त)

मंद-मंद चढ़ि चल्यो चैत-निसि चंद चारु,
मंद-मंद चाँदनी पसारत[१] लतन तें।
मंद-मंद जमुना तरंगिनि[२] हिलोरैं लेति,
मंद-मंद मोद[३] मंजु मल्लिका सुमन[४] तें।

१ फैलाता है। २ नदी। ३ सुगंध। ४ बेले का फूल।

'देव' कबि मंद-मंद सीतल सुगंध पौन[1],
देखि छबि छीजत मनोज छन-छन[2] तें।
मंद-मंद मुरली बजावत अधर धरे,
मंद-मंद निकस्यौ मुकुंद[3] मधुबन तें॥

इस कवित्त में ऊपर कहे हुए मधुर एवं सानुस्वार वर्णों की अधिकता है। शब्दों से माधुर्य टपका पड़ रहा है।

(२) ओज

जहाँ द्वित्व वर्णों (क्क, च्च, ट्ट, त्त, प्प), संयुक्त (क्ख, ग्घ च्छ, ज्झ, ड्ड, ड्ढ, त्थ, द्ध, प्फ, ब्भ) वर्णों, रेफ (र्क, र्च, आदि) एवं रकार-युक्त (क्र, द्र, प्र) वर्णों तथा ट, ठ, ड, ढ से बने हुए शब्दों की अधिकता और लंबे लंबे समासों द्वारा कविता की रचना की जाय वहाँ 'ओज' गुण होता है। यह गुण वीर एवं रौद्र रसों में विशेष रूप से तथा बीभत्स एवं भयानक रसों में सामान्यतया आवश्यक होता है।

उदाहरण—(अमृतध्वनि)

दिल्लिय दलन[4] दबाय करि, सिव सरजा[5] निरसंक।
लूटि लियो सूरति सहर, बंकक्करि अति डंक[6]॥
बंकक्करि अति डंकक्करि अस, संकक्कुलि खल[7]।
सोचच्चकित, भरोचच्चलिय बिमोचच्चखजल[8]॥
तट्ठट्ठइ मन[9] कट्ठट्ठिक सोइ[10] रट्ठट्ठिल्लय[11]।

---

१ (पवन) वायु। २ क्षण-क्षण की शोभा से कामदेव लज्जित होता है। ३ श्रीकृष्ण। ४ दिल्ली की सेना को। ५ शिवाजी की उपाधि, शरजाह। ६ डंके को अत्यंत वंक(टेढ़ा) करके, जोर से नगाड़े बजाकर। ७ सब खल शंकित हो गए। ८ सोचते हुए और चकपकाकर आँखों से जल बहाते हुए भड़ोच की ओर चले। ९ वह बात मन में ठानकर। १० उसे कठिनता से ठीक करके। ११ रटकर ठट्ट को ठेला।

सद्दिसि[1] दिसि भद्दवि भइ रद्दिल्लिय[2] ॥

इस छंद में भी 'ओज' गुण उत्पन्न करनेवाले पूर्वोक्त प्रकार के वर्णों की रचना की गई है।

(३) प्रसाद

जहाँ सरल, सीधे-सादे, सुबोध शब्दों के द्वारा वाक्य-रचना की जाती है वहाँ 'प्रसाद' गुण होता है। इस गुण का उपयोग सभी रसों में होना चाहिए। वस्तुतः माधुर्य और ओज गुण शब्दों की बाहरी बनावट से संबंध रखते हैं और प्रसाद गुण उनके अर्थ से संबंध रखता है। इसलिए इसका प्रयोग सभी रसों के लिए है।

उदाहरण—(बहर)

उठो हिंदुओं अपने बल को सँभालो।
दशा हिंदभाषा की कुछ देखो भालो।
जमाने के धक्कों से इसको बचा लो।
सपूती दिखा दो झपटकर उठा लो।
सहित-प्रेम छाती से इसको लगा लो।
हृदय के सिंहासन पर इसको बिठा लो॥

इसमें सभी शब्द सरल एवं सुबोध हैं। अतः इसमें पूर्ण 'प्रसाद' गुण है।

दोष

काव्य के सभी गुणों से युक्त होने की अपेक्षा कविता का सब प्रकार से निर्दोष होना अधिक आवश्यक है, क्योंकि विष की एक बूँद भी अमृत के घड़े को विगाड़ने के लिए पर्याप्त है। दोषों के आने से कविता के वास्तविक 'रस' का आनंद उठाने में पाठक या श्रोता को बाधा पहुँचती

---

१ सद्यः (तुरंत) सब दिशाओं में। २ दिल्ली की भद्द हुई और वह दबकर रद्द (खराब, नष्टभ्रष्ट) हो गई।

है। इससे 'रस' की हानि हो जाती है और मुख्य अर्थ कुछ का कुछ समझ लिया जाता है; इसलिए दोषों से कविता को मुक्त रखना अत्यंत आवश्यक है।

मुख्यार्थ की हीनता को दोष कहते हैं।

कवि जिस अभिप्राय से कुछ लिखना या कहना चाहता है उस अभिप्रेत अर्थ को मुख्यार्थ कहते हैं। काव्य दो प्रकार का हो सकता है, एक वह जिसमें रस पर विशेष ध्यान हो, दूसरा वह जिसमें चमत्कार ही पर ध्यान रहे। सरस काव्य में रस मुख्य होगा और चमत्कार-प्रधान या नीरस काव्य में चमत्कार मुख्य होगा। इसलिए मुख्यार्थ अर्थात् रस अथवा चमत्कार को क्षति पहुँचानेवाले कारण दोष होंगे।

'हीनता' का तात्पर्य भी समझ लेना चाहिए। इसका तात्पर्य है मुख्यार्थ की प्रतीति में बाधा का पड़ना। चमत्कार-प्रधान या नीरस काव्य में चमत्कार का विलंब से जाना जाना ही अर्थ-प्रतीति में बाधा है। अर्थ-प्रतीति में तीन प्रकार से बाधाएँ उपस्थित होती हैं—

(१) जहाँ प्रतीति होती ही नहीं,
(२) जहाँ प्रतीति विलंब से होती है,
(३) जहाँ प्रतीति तो होती है, पर मुख्यार्थ का अपकर्ष होता है।

इसी प्रकार हीनता या क्षति भी दो प्रकार की होती है—

(१) अभिप्रेतार्थ की प्रतीति में सीधे क्षति।
(२) अभिप्रेतार्थ की प्रतीति में सीधे नहीं क्रमप्राप्त क्षति।

सीधे क्षति 'रस' के संबंध में होती है। पर क्रमप्राप्त क्षति 'शब्द' और 'अर्थ' के संबंध में होती है।

दोष को दो विभागों में रख सकते हैं—

(१) नित्य,
(२) अनित्य।

जिन दोषों का समर्थन 'अनुकरण' कहकर ही किया जा सकता है और किसी प्रकार से नहीं वे दोष नित्य होते हैं। पर अनित्य दोष वे हैं जिनका परिहार करने के और प्रकार भी हो सकते हैं।

मुख्यार्थ शब्द, अर्थ या रस के आश्रय से लक्षित होता है इसीसे तीन प्रकार के दोष होते हैं—

(१) शब्दगत दोष,
(२) अर्थगत दोष,
(३) रसगत दोष।

इन्हें संक्षेप में शब्ददोष, अर्थदोष, और रसदोष कहते हैं। शब्ददोष के भी अंतर्विभाग हैं—

(१) वाक्यदोष,
(२) पददोष,
(३) पदांशदोष।

पददोष से पदांशदोष इसलिए भिन्न है कि वह प्रत्यय, विभक्ति आदि में होता है। दोषों का वृक्ष यों होगा—
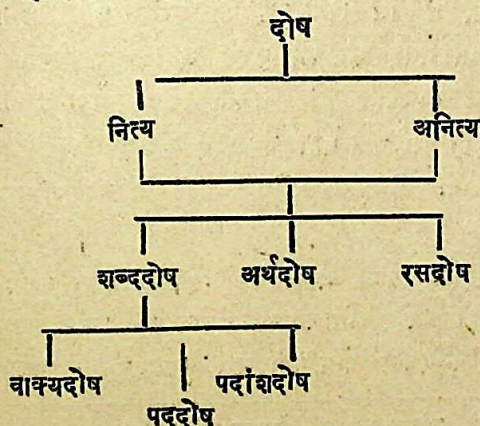
सूचना—अलंकारों के दोष भी इन्हीं के अंतर्गत आ जाते हैं। यहाँ पर कुछ ही आवश्यक जानने योग्य दोषों का विवेचन किया जाता है।

शब्ददोष

शब्दार्थ या वाक्यार्थ की प्रतीति के पहले जो दोष जान पड़ते हैं वे शब्ददोष कहलाते हैं।

(१) श्रुतिकटुत्व—कठोर वर्णों का रचना में प्रयोग श्रुतिकटुत्व है।

'श्रुतिकटु' का अर्थ है जो कानों को कड़ुआ (बुरा) जान पड़े अर्थात् खटके। कविता में कठोर वर्णों की रचना साधारण रूप से खटकती है। विशेषकर जहाँ कुछ दूर तक कोमल वर्ण हों पर फिर कठोर हो जायँ या इसके विपरीत पहले कठोर फिर कोमल हों। हलवे में जैसे कंकड़ बुरा लगता है।

उदाहरण—(हरिगीतिका)

जो इस विषय पर आज कुछ कहने चले हैं हम यहाँ।
क्या कुछ सजग होंगे सखे, उसको सुनेंगे जो जहाँ।
कवि के कठिनतर कर्म की करते नहीं हम धृष्टता।
पर क्या न विषयोत्कृष्टता[1] करती विचारोत्कृष्टता[2]॥

'धृष्टता' की तो कोई बात नहीं पर विषयोत्कृष्टता तथा विचारोत्कृष्टता शब्द कानों को खटकते हैं। कानों को क्या जीभ को भी खटकते हैं।

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि शृंगार, शांत, करुण आदि कोमल रसों में ही कठोर वर्णों की रचना दोष है। वीर, रौद्र आदि उग्र रसों में ऐसी वर्णरचना दोष नहीं, गुण हो जाती है। यथा,

---

१ विषय की उत्तमता। २ विचार की उत्तमता।

बक्र-बक्र करि[1] पुच्छ करि रुष्ट[2] रिच्छ[3] कपि-गुच्छ[4]।
सुभट ठट्ट[5] घनघट्ट[6] सम मर्दहिं रच्छन[7] तुच्छ[8] ॥

अधिकतर वर्ण कठोर हैं। पर कविता वीर रस की है इसलिए गुण है, दोष नहीं।

(२) <u>च्युतसंस्कृति</u>—व्याकरण के लक्षण के विरुद्ध रचना में च्युतसंस्कृति दोष होता है।

'च्युतसंस्कृति' का अर्थ है संस्कृति (व्यवहार या व्याकरण के लक्षण के अनुगमन) से च्युत (गिरा हुआ = हीन)।

उदाहरण—(वसंततिलका)

गत जब रजनी हो पूर्व-संध्या बनी हो।
उडुगन भी क्षय हां दीखते भी कहीं हों।
मृदुल मधुर निद्रा चाहता चित्त मेरा।
तब पिक करती तू शब्द प्रारंभ तेरा ॥

हिंदी-व्याकरण के अनुसार 'तेरा' के स्थान पर 'अपना' होना चाहिए।

<u>सूचना</u>—गँवारी भाषा का यदि काव्य में व्यवहार हो तो वहाँ यह दोष न होगा।

(३) <u>अश्लीलत्व</u>—जहाँ लज्जासूचक, घृणा-प्रदर्शक अथवा असंगलवाची शब्द का प्रयोग हो।

'अश्लील' शब्द 'श्रील' के विपरीत है। 'श्रील' का अर्थ है शोभा-कारी, शिष्ट और मंगल। बहुत से लोग 'अश्लील' का विपर्यय 'श्लील' लिखते हैं जो ठीक नहीं। 'श्रील' ही 'अ' लगने से 'श्लील' हो गया है।

---

१ मुख टेढ़ा करके। २ क्रुद्ध। ३ भालू। ४ बंदरों का समूह। ५ वीरों का समूह। ६ बादलों की घटा। ७ राक्षस। ८ निकृष्ट।

उदाहरण—(दोहा)

बौरे चूतन[1] रंग में हलि हलि अलि भगरैल।
अंतक[2]-दिन बर बिहरिहौं, लखि न भौंर यह सैल॥

'चूत' शब्द लज्जासूचक, हलि हलि घृणोत्पादक और 'अंतक' (यम) अमंगलवाची है।

सूचना—शांत रस में जुगुप्सा (घृणा), शृंगार में अश्लीलता और भविष्य अमंगल-सूचन में यह दोष नहीं मानते।

(४) अप्रतीतत्व—जहाँ ऐसे शब्द का प्रयोग हो जो किसी विशेष शास्त्र में पारिभाषिक हो और लोक में उस अर्थ में अप्रसिद्ध हो।

उदाहरण—(दोहा)

तत्त्वज्ञान की ज्योति सों, भो आसय को नास।
करम कियेहूँ परै नहिं, ताके कबहूँ फाँस॥

'आशय' शब्द योगशास्त्र का है। इसका अर्थ है 'शुभाशुभ कर्मों से उत्पन्न वासना का संस्कार।' यह अर्थ उसी शास्त्र में प्रसिद्ध है, लोक में नहीं। इससे अप्रतीतत्व दोष है।

सूचना—विशिष्ट शास्त्र के पंडित वक्ता के स्वगत कथन में यह दोष न होगा।

(५) ग्राम्यत्व—जहाँ केवल लोक-व्यवहार (ग्राम) में ही चलने वाले (काव्य में नहीं) शब्दों का प्रयोग किया जाय।

उदाहरण—(बरवै)

करिया फरिया[3] पहिरे कुरता लाल।
गुजरी[4] गोड़[5] सुगुजरी[6] चमकी[7] चाल॥

फरिया, गुजरी, गोड़ और चमकी शब्द ग्राम्य हैं।

---

१ आम। २ अंतिम दिन (आखिरकार)। ३ लहँगा। ४ पैर का एक गहना। ५ पैर। ६ ग्वालिन। ७ मटकने वाली।

सूचना—(१) ग्रामीण वक्ता की उक्ति में यह दोष नहीं माना जाता।

(२) संस्कृत साहित्य मे 'कटि' शब्द ग्राम्य कहा गया है। इसी ढर्रे पर कुछ लोग हिंदी में 'कमर' शब्द को ग्राम्य कहना चाहते हैं। इसी प्रकार 'गाल' शब्द को भी ग्राम्य कहते हैं। पर काल के गाल में जाना, गाल बजाना आदि हिंदी के अतिप्रचलित मुहावरे हैं।

(६) क्लिष्टत्व—जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिनका अर्थ बड़ी कठिनता से जाना जाय।

उदाहरण—(दोहा)

खगपति-पति-तिय-पितु-बधू-जल समान तुव वैन।
हंसबाहिनी-पति-पिता-दल समान हैं नैन॥

खग = पक्षी + पति = स्वामी गरुड़ + पति = स्वामी—विष्णु + तिय स्त्री—लक्ष्मी + पितु = पिता—समुद्र + वधू = पत्नी—गंगा। गंगा-जल अर्थ बड़ी क्लिष्टता से ज्ञात होता है। इसी प्रकार दूसरी पंक्ति में हंस-वाहिनी = सरस्वती + पति—ब्रह्मा + पिता कमल में भी क्लिष्टता है।

सूचना—(१) क्लिष्टत्व दोष समास में होने के कारण दोष होता है। (२) यदि भिन्न-भिन्न शब्दों में रहने पर भी क्लिष्टत्व हो तो वह शब्ददोष न होकर वाक्यदोष हो जाएगा। (३) क्लिष्टत्व दोष प्रहेलिका और श्लेष में नहीं माना जाता।

वाक्यदोष

वाक्यार्थ की प्रतीति के पहले जो दोष जान पड़ते हैं वे वाक्य-दोष होते हैं।

शब्दगत दोष वाक्यगत दोष भी होते हैं। यहाँ उन दोषों में से कुछ आवश्यक दोषों का उल्लेख किया जाता है जो केवल वाक्य में होते हैं।

(१) न्यूनपदत्व—जहाँ वास्तविक अर्थ को प्रकट करनेवाले शब्दों की कमी हो।

उदाहरण—(दोहा)

राज तिहारे खड्ग तें प्रगट भयो जस-फूल।
दान देइ सींचत सदा, भिक्षुकगन को मूल॥

'खड्ग' को लता कहने से यश को फूल कहने में स्पष्टता आती। दान को सरिता या जल कहने से ही भिक्षुकों की जड़ सींचने में स्पष्टता होती। इसलिए शब्दों की कमी है।

(२) अधिकपदत्व—जहाँ ऐसे शब्द पड़े हों जिनकी वाच्यार्थ में आवश्यकता न हो।

उदाहरण—(दोहा)

कीरति-हंसिनि कौमुदी लौं फैली तुव राज।
डसै तिहारे सत्रु को खड्गलता अहिराज॥

पहली पंक्ति में 'हंसिनि' शब्द और दूसरी में 'लता' अधिक है। 'कीर्ति-कौमुदी' और 'खड्ग-अहिराज' से ही काम चल जाता।

(३) अक्रमत्व—जिस शब्द के अनंतर जो शब्द आना चाहिए उसको अन्यत्र रख देना।

उदाहरण—(दोहा)

बंसी सुंदर बट जितै कान्ह चरावत धेनु।
लकुटी इक कर में लिये मगन बजावत बेनु॥

'बंसी सुंदर बट' को 'सुंदर बंसीवट' होना चाहिए।

अर्थदोष

जहाँ काव्य में ऐसे अर्थ का प्रयोग हो जो अभीष्ट तात्पर्य का पोषक न हो।

(१) पुनरुक्ति—जहाँ एक बार कहा हुआ अर्थ फिर से प्रयुक्त हो।

उदाहरण—(द्रुतविलंबित)

क्वणित मंजु विषाण हुए कई,
रणित शृंग हुए बहु साथ ही।
फिर समाहित प्रांतर भाग में
सुन पड़ा स्वर धावित धेनु का॥

'विषाण' और 'शृंग' पर्याय हैं, इनका एक ही अर्थ है। दूसरी पंक्ति में स्पष्ट पुनरुक्ति है।

(२) दुष्क्रमत्व—जहाँ लोक या शास्त्रविहित क्रम का उल्लंघन हो।

उदाहरण-(सवैया)

लीन्हो उखारि पहार बिसाल चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को वेग लजायो।
तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो॥

दूसरी पंक्ति में 'मन को' बाद में रखना था। मन का वेग खग-राज के वेग से अधिक माना जाता है।

रसदोष

जहाँ मुख्यार्थ द्वारा जिस रस की प्रतीति होती हो उसमें बाधा उपस्थित हो।

शब्ददोष, वाक्यदोष, अर्थदोष भी यथास्थान रसप्रतीति में बाधक होते हैं। पर वे परोक्ष रूप से बाधा पहुँचाते हैं। जो दोष प्रत्यक्ष (सीधे) रस के बाधक होते हैं वे रसदोष कहलाते हैं।

स्वशब्दवाच्यत्व—रस, स्थायी भाव या संचारी भावों को उन्हीं के वाचक शब्दों से प्रकट करना।

रस या भाव व्यंग्य होते हैं। अनुभाव आदि के द्वारा उनको प्रकट करते हैं। यदि किसी रस या भाव का वाचक शब्द मात्र रखा जायगा तो उससे रस-प्रतीति में कुछ भी सहायता न होगी। प्रत्युत बाधा खड़ी हो जायगी। इसी से रस भावादि को वाचक शब्दों से कहना दोष माना गया है।

उदाहरण—(दोहा)

परशुराम ने जब किया श्रीरघुनाथविरोध।
तब लक्ष्मण को आ गया तुरत बड़ा ही क्रोध॥

'क्रोध' कहने से स्वशब्दवाच्यत्व दोष है।

सूचना—(१) स्वशब्दवाच्यत्व दोष इसी लिए माना जाता है कि केवल वाचक शब्द कह देने से रस या भाव की प्रतीति नहीं होती। यदि ऊपर के उदाहरण में यह कहा गया होता कि लक्ष्मण के नेत्र लाल हो गए, ओठ फड़कने लगे, भौंहें टेढ़ी हो गईं, तो क्रोध की प्रतीति हो जाती। क्रोध का नाम लेने की कोई आवश्यकता न पड़ती। इसी प्रकार यदि कहा जाय कि कैसा करुण दृश्य है, कैसा अद्भुत व्यापार है आदि, तो इससे करुण एवं अद्भुत रस की क्या प्रतीति होगी। इसी प्रकार संचारी भावों को भी समझिए। 'राम को बड़ा हर्ष हुआ, सीता को बड़ी लज्जा आई' से कोई रूप ही सामने नहीं आता, भाव की प्रतीति क्या हो। पर 'राम का मुख खिल उठा, सीता ने सिर नीचे कर लिया' कहने से हर्ष और लज्जा का रूप सामने आ जाता है यद्यपि हर्ष और लज्जा शब्द व्यवहृत नहीं हैं।

(२) ऊपर जितने भी दोष दिखाए गए हैं वे अनुकरण में नहीं होते। *

(३) दोष का कारण अनौचित्य ही होता है। औचित्य को ध्यान में रखकर लिखी बात कभी दोष के अंतर्गत नहीं आ सकती। †

* अनुकारे च सर्वेषां दोषाणां नैव दोषता—साहित्यदर्पण।

† अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥
—ध्वन्यालोक

पंचम प्रकाश

पिंगल

(१) गद्य और पद्य

प्रत्येक भाषा में काव्य-रचना दो प्रकार की प्रणालियों द्वारा हो सकती है—(१) गद्य, (२) पद्य। मात्रा एवं वर्ण तथा गति-प्रवाहादि से अनियमित किंतु व्याकरण से व्यवस्थित शब्द-योजना को 'गद्य' कहते हैं। इसके विपरीत मात्रा एवं वर्णों की संख्या अथवा उनके क्रम से नियमित तथा विराम गति-प्रवाहादि से व्यवस्थित शब्द-योजना को 'पद्य' कहते हैं। इसमें यदि व्याकरण की दृष्टि से शब्द-क्रम में हेर-फेर भी हो जाय तो दोष नहीं माना जाता। जैसे—

जड़-चेतन गुन-दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार[१]।
संत-हंस गुन गहहिं[२] पय, परिहरि बारि-बिकार[३]॥

यह पद्यबद्ध रचना है, क्योंकि इसमें मात्राओं की संख्या नियमित हैं एवं यह गति, यति आदि से व्यवस्थित है। साथ ही शब्द-योजना में व्याकरण के क्रम का ध्यान भी नहीं रक्खा गया है। व्याकरण के क्रम से व्यवस्थित होने पर इसका गद्य-रूप यों होगा—'करतार (ने) विश्व (को) जड़-चेतन (और) गुन-दोषमय कीन्ह, (किंतु) संत-हंस बारि-बिकार परिहरि गुन-पय गहहिं।

(२) छंदशास्त्र

'छंद' शब्द 'पद्य' का समानार्थवाची है। इसी कारण जिस शास्त्र में पद्य-रचना के नियमों तथा लक्षणों एवं उदाहरणों के साथ साथ

---

१ ब्रह्मा। २ दूध। ३ जलरूपी विकार (दोष)।

पद्य के भेदोपभेदों का सविस्तर विवेचन किया गया हो उसे 'छंदशास्त्र' कहते हैं। छंदशास्त्र के आदि-प्रवर्तक शेषावतार महर्षि पिंगल माने जाते हैं। अतएव इस शास्त्र का नामांतर 'पिंगल' भी है।

छंदशास्त्र भी काव्य का अंग है। प्राचीन ऋषि महर्षियों ने इस शास्त्र को यहाँ तक महत्ता दी है कि यह वेद के 'षडंगों'[1] में गिना जाता है और इसके विना वेद का ज्ञान अपूर्ण ही समझा जाता है। पद्य में पद-योजना लयपूर्ण होने के कारण श्रुति-प्रिय एवं मनोहर हो जाती है। इसमें संक्षेप में बहुत-सी बातों का समावेश किया जा सकता है। उक्त दोनों कारणों से पद्य की सबसे मुख्य विशेषता यह है कि पद्यबद्ध रचना के पढ़ने में मन अधिक लगता है। और किसी भी विषय को कंठस्थ करने में सुभीता रहता है। इसी कारण श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण, व्याकरण, कोश, वैद्यक, ज्योतिष आदि सभी विषयों के ग्रंथ पद्य में ही उपलब्ध होते हैं।

(३) लघु-गुरु-नियम

'वर्ण' या 'अक्षर' दो प्रकार के होते हैं—ह्रस्व एवं दीर्घ। वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है उसे 'मात्रा' कहते हैं। अ, इ, उ, ऋ तथा इनसे युक्त व्यंजनों के उच्चारण में जो समय लगता है उसकी एक मात्रा मानी जाती है और आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ तथा इनके युक्त व्यंजनों के उच्चारण में जो समय लगता है उसकी दो मात्राएँ मानी जाती हैं, क्योंकि इनके उच्चारण में एकमात्रिक अक्षरों की अपेक्षा दुगुना समय लगता है। व्याकरण में एकमात्रिक अक्षरों को 'ह्रस्व वर्ण' और द्विमात्रिक को 'दीर्घ वर्ण' कहते हैं। 'ह्रस्व' और दीर्घ' को 'पिंगलशास्त्र' में 'लघु' और 'गुरु' कहते हैं। 'लघु' वर्ण का चिह्न एक खड़ी पाई (।) और 'गुरु' वर्ण का चिह्न वक्ररेखा (ऽ) है। संक्षेप में लघु के लिये 'ल' और

---

१ वेद के छह अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष।

गुरु के लिए 'ग' भी लिखा जाता है। लघु-गुरु के विषय में निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।*

१—लघु वर्ण एकमात्रिक और दीर्घ वर्ण द्विमात्रिक होते हैं। जैसे, 'रमापति' शब्द में 'र', 'प' और 'ति' ह्रस्व या लघु अक्षर होने के कारण एकमात्रिक हैं और 'मा' दीर्घ या गुरु होने के कारण द्विमात्रिक है। इस प्रकार उक्त चार अक्षरों के शब्द में पाँच मात्राएँ हैं।

२—सानुस्वार और विसर्ग वर्ण भी दीर्घ वा गुरु माने जाते हैं, जैसे—कंज, पंख और दुःख में 'कं' 'पं' और 'दुः' गुरु वर्ण हैं। सानुस्वार या सविसर्ग वर्ण यदि स्वयं दीर्घ हों तो मात्रा में कोई वृद्धि नहीं होती, जैसे—'गांगेय' और 'हाः हाः' में 'गां' और 'हाः' स्वयं गुरु वर्ण हैं, विसर्ग या अनुस्वार के कारण इन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। परंतु जिस वर्ण के ऊपर अर्द्ध अनुस्वार या चंद्रविंदु (ँ) हो उसमें एक ही मात्रा मानी जाती है, अतएव वह लघु गिना जाता है; जैसे—'हँसना' और 'फँसना' के 'हँ' तथा 'फँ' लघु वर्ण हैं।

३—संयुक्ताक्षर के पूर्व का वर्ण प्रायः दीर्घ माना जाता है, जैसे—हट्ट, युक्त, अक्षर और वर्ण में 'ट्ट' 'क्त' 'क्ष' और 'र्ण' संयुक्ताक्षर हैं इस कारण इनके पूर्ववर्ण 'ह', 'यु', 'अ' और 'व' में आघात पड़ने से वे 'द्विमात्रिक' या 'गुरु' माने जाते हैं। यदि किसी सामासिक पद के उत्तर पद का आद्याक्षर संयुक्त हो तो उसके पूर्व-पद का अंतिम अक्षर विकल्प से—कवि या पाठक के सुविधानुसार—लघु या गुरु पढ़ा जा सकता है; जैसे—'शब्द-क्रम' और 'कर्तव्य-ज्ञान' में 'क्र' तथा 'ज्ञ' के पूर्व के अक्षर 'ब्द' एवं 'व्य' लघु भी पढ़े जा सकते हैं और गुरु भी।

---

*अधोलिखित आर्या को कंठस्थ कर लेने से लघु-गुरु के नियम स्मरण रखने में सुविधा होगी।

संयुक्ताद्यं दीर्घं, सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रम्।
विज्ञेयमक्षरं गुरु, पादान्तस्थं विकल्पेन॥

४—कहीं कहीं संयुक्ताक्षर के पूर्व का वर्ण दीर्घ नहीं भी माना जाता, जैसे—तुम्हारा, कुल्हाड़ा में 'तु' और 'कु'। संयुक्ताक्षर के पूर्व का वर्ण यदि दीर्घ हो तो मात्रा में कोई वृद्धि नहीं होती।

५—हलंत के पूर्व का वर्ण दीर्घ माना जाता है और हलंत वर्ण की मात्रा नहीं गिनी जाती। जैसे—राजन्, श्रीमान् में 'ज' तथा 'मा' गुरु (द्विमात्रिक) हैं तथा 'न्' की मात्रा नहीं गिनी जायगी।

६—कहीं-कहीं लय के अनुसार दीर्घ वर्ण को भी ह्रस्व पढ़ना पड़ता है। ऐसे स्थान पर वह वर्ण एकमात्रिक या लघु ही माना जायगा। जैसे—

"बिनु जर[1] जारि करइ सोइ छारा[2]।"
"जो सुत कहउँ संग मोहिं लेहू॥"
"धनुष जज्ञ जेहि कारन होई।"
"पूजन गौरि सखी लेइ आई॥"

इनमें 'सोइ', 'मोहिं', 'जेहि', और 'लेइ' के 'सो', 'मो', 'जे', और 'ले' को दीर्घ होते हुए भी लघु पढ़ना पड़ेगा, अन्यथा गुरु पढ़ने से प्रत्येक पद में सोलह के स्थान पर सत्रह मात्राएँ हो जायँगी और लय में व्याघात पड़ेगा।

७—संस्कृत पद्यों में तथा हिंदी के वर्णिक वृत्तों में चरणांत का अंतिम लघु वर्ण भी विकल्प से आवश्यकतानुसार गुरु माना जाता है। जैसे—

दुखित हैं धनहीन, धनी सुखी।
यह विचार परिष्कृत[3] है यदि॥
मन! युधिष्ठिर को फिर क्यों हुई?
विभवता[4] भव-ताप-विधायिनी[5]॥

---

१ जड़। २ राख, धूल। ३ ठीक। [४] ऐश्वर्य, वैभव। ५ सांसारिक कष्ट देनेवाली।

यहाँ दूसरे चरण के अंतिम शब्द 'यदि' का अंतिम अक्षर 'दि' लघु होते हुए भी छंद के नियम के अनुसार दीर्घ माना जायगा।

सारांश यह कि लघु-गुरु के उक्त नियमों के होते हुए भी छंदशास्त्र में 'लय' की ही प्रधानता है। जहाँ जैसी आवश्यकता पड़ जाती है वहाँ लघु के स्थान पर गुरु और गुरु के स्थान पर लघु पढ़ना ही पड़ता है।

(४) गणविचार

छंदों के भेदों का विवेचन करने के पूर्व 'गणों' के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। तीन वर्णों का एक 'गण' होता है। ऊपर कहा जा चुका है कि 'वर्ण' लघु गुरु के भेद से दो प्रकार के होते हैं। अतएव प्रस्तार द्वारा लघु-गुरु के भेद से तीन-तीन वर्णों के आठ गण होते हैं। उनके नाम और लक्षण इस प्रकार हैं—

संख्या	गण	रूप	संकेत	उदाहरण
१	मगण	SSS	म	भंडारी
२	नगण	।।।	न	भरत
३	भगण	S।।	भ	भारत
४	यगण	।SS	य	भरोसा
५	जगण	।S।	ज	भविष्य
६	रगण	S।S	र	भारती
७	सगण	।।S	स	भगिनी
८	तगण	SS।	त	भांडार

पिंगल-शास्त्र में ११ अक्षर संक्षेप में गणादि एवं लघु-गुरु के सूचक हैं—म, न, भ, य, ज, र, स, त, ल और ग। इन्हीं पर इस शास्त्र की नींव खड़ी की गई है। आजकल इसके ज्ञान के लिए निम्नलिखित सूत्र बहुत प्रचलित है—

'यमाताराजभानसलगा'

इस सूत्र के पूर्व आठ अक्षर आठों गणों के सांकेतिक वर्ण हैं, शेष

'ल' से 'लघु' और 'गा' से 'गुरु' का बोध होता है। इसी सूत्र में सबके रूप भी प्रत्यक्ष हैं। 'यगण' का रूप जानना हो तो 'य' तथा उसके आगे के दो वर्ण मिलाकर एक गण बन जायगा—'यमाता (ISS)'। यही 'यगण' का रूप है। इसी प्रकार 'सगण' का रूप होगा 'सलगा (IIS)'। इसी क्रम से और भी समझ लीजिए। 'ल' ह्रस्व है अतएव लघु है और 'गा' दीर्घ वर्ण होने से 'गुरु' है।

(५) गणों के देवता और फल

गणों के देवता और उनके फल आदि के विषय में पिंगलशास्त्र में बहुत कुछ विवेचन किया गया है। विस्तार-भय से यहाँ इनका संक्षेप में ही उल्लेख किया जाता है।

शास्त्रकारों ने आठ गणों के स्वामी आठ देवता माने हैं, प्रत्येक का फल भिन्न-भिन्न होता है। निम्नलिखित विवरण से यह सब स्पष्ट हो जायगा*।

	गण	देवता	फल
शुभ	मगण	भूमि	श्री
	नगण	स्वर्ग	सुख
	भगण	चंद्र	यश
	यगण	जल	वृद्धि
अशुभ	जगण	सूर्य	रोग
	रगण	अग्नि	मृत्यु
	सगण	वायु	प्रवास
	तगण	व्योम	शून्य

*मो भूमिः श्रियमातनोति यजलं वृद्धिं रचाग्निर्मृतिम्।
सो वायुः परदेशदूरगमनं तव्योम शून्यं फलम्॥
जः सूर्यो रुजमाददाति विपुलं भेन्दुर्यशो निर्मलम्।
नो नाकश्च सुखप्रदः फलमिदं प्राहुर्गणानां बुधाः॥

देव-विषयक काव्यों में तो शुभाशुभ का विचार ही नहीं रह जाता, किंतु नर-विषयक काव्यों के प्रारंभ में अशुभ गण वर्जित हैं। यह नियम छंद के प्रथम चरण के आदि के तीन अक्षरों के लिए ही है, अन्यत्र नहीं।

गण-वृत्तों में गण-दोष नहीं माना जाता, क्योंकि वहाँ जिस गण का विधान किया जाता है वह गण, शुभ हो चाहे अशुभ, लाना ही पड़ता है। जैसे 'दुर्मिल सवैया' आठ सगणों का होता है। वहाँ आरंभ में अशुभ 'सगण' का लाना अनिवार्य है। ऐसे अवसर पर ध्यान यही रखना चाहिए कि प्रारंभ में यदि 'ज, र, स, त' लाने पड़ें तो यथासंभव देववाची या मंगलात्मक शब्द रखे जायँ। मात्रिक छंदों के प्रारंभ में तो इनका प्रयोग बचाना ही चाहिए। कुगण के पड़ने से छंद की रोचकता नष्ट हो जाती है। अतएव काव्य-रचना में कुछ लोग 'द्विगुण' का भी विचार करते हैं। एक गण के साथ दूसरे विशेष गण के संयोग से छंद की रोचकता की कई अंशों में रक्षा की जा सकती है। 'द्विगण' के संबंध में विस्तृत विवेचन की आवश्यकता नहीं जान पड़ती, तथापि मगण और नगण ये परस्पर मित्र हैं, भगण-यगण दास हैं, जगण-तगण उदासीन तथा रगण सगण शत्रु हैं।

(६) शुभाशुभ वर्ण एवं दग्धाक्षर

वर्णों में भी शुभाशुभ का ध्यान रखना पड़ता है। स्वर सभी शुभ माने गए हैं। व्यंजनों में 'क, ख, ग, घ, च, छ, ज, त, द, ध, न, य, श, स' ये शुभ हैं और सब अशुभ। अशुभ वर्णों में भी 'झ, ह, र, भ, ष' ये पाँच तो नितांत दूषित हैं, इनको 'दग्धाक्षर' कहते हैं। पद्य के आरंभ में इनका होना एकदम वर्जित है। किंतु यदि ये 'गुरु' होकर आएँ अथवा किसी देवता वा मंगलवाची शब्द के प्रारंभ में हों तो उक्त दोष का परिहार हो जाता है।

(७) गति-यति

प्रत्येक छंद की कोई 'लय' होती है, उसे 'गति' या 'प्रवाह' भी कहते

हैं। छंद की रचना में 'गति' या 'लय' का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है; पर इसके लिए कोई विशेष नियम नहीं है। लय का ज्ञान अभ्यास पर ही अवलंबित है। लक्षण के अनुसार शुद्ध रहते हुए भी गति का ध्यान न रखने से छंद दोष-युक्त हो जाता है; जैसे—

बरु नरक कर भल बास ताता।
जनि दुष्ट संग देहु विधाता॥

इस छंद में चौपाई के लक्षण के अनुसार १६ मात्राएँ होने पर भी लय का अभाव है, पढ़ने में रुकावट आ जाती है; वह धारावाहिक गति से नहीं चलती; अतः दूषित है। ऐसे स्थलों पर, जहाँ गति या प्रवाह ठीक न हो वहां 'गतिभंग' दोष माना जाता है। उक्त चौपाई के लययुक्त करने के लिए हमें इसका रूप यों करना होगा—

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देहु विधाता॥

इसके सिवाय प्रत्येक पद्य में चार चरण होते हैं। उनमें से एक चरण का शब्द काटकर या टूटकर दूसरे चरण में लगने से भी पद्य दूषित होता है, ऐसे दोष को 'यति-भंग' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

दोउ समाज निमिराज[1] रघु,-राज[2] नहाने प्रात।
बैठे सब वट-बिटप-तर,[3] मन मलीन कृस-गात[4]॥

यहाँ 'रघुराज' शब्द दोहे के पहले और दूसरे चरणों में कटकर 'रघु' एक ओर रह जाता है और 'राज' दूसरी ओर चला जाता है। यही 'गतिभंग' है।

(८) छंदों के भेदोपभेद

छंद दो प्रकार के होते हैं—(१) वैदिक और (२) लौकिक।

---

१ जनक। २ राम। ३ बरगद के पेड़ के नीचे। ४ दुर्बल शरीर।

वैदिक छंदों का हिंदी-भाषा में कोई प्रयोजन नहीं, अतएव उनका वर्णन इस स्थान पर अनुपयुक्त होगा। लौकिक छंद के पुनः दो भेद होते हैं—(१) मात्रिक अथवा जाति और (२) वर्णिक अथवा वृत्त। साधारणतः प्रत्येक छंद में चार 'चरण' होते हैं *। चरण को 'पद' अथवा 'पाद' भी कहते हैं। जिन छंदों के चरणों में मात्राओं की संख्या का नियम हो उन्हें मात्रिक छंद या जाति कहते हैं तथा जिनमें वर्णों की संख्या तथा लघु-गुरु के क्रम का नियम हो उन्हें वर्णिक छंद या वृत्त कहते हैं। इनमें कुछ को छोड़कर प्रायः सबमें 'गणों' का उपयोग किया जाता है। मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंद पुनः तीन-तीन प्रकार के होते हैं—सम, अर्द्धसम और विषम।

(१) मात्रिक भेद

१—'मात्रिक सम' वे छंद हैं जिनके चारों चरणों में मात्राओं का क्रम समान हो; जैसे—चौपाई, हरिगीतिका, रोला आदि।

२—'मात्रिक अर्द्धसम' वे छंद हैं जिनके पहले और तीसरे चरणों में तथा दूसरे एवं चौथे चरणों में बराबर मात्राएँ हों; जैसे—दोहा, सोरठा, बरवै आदि।

३—'मात्रिक विषम' वे छंद हैं जिनके चारों चरणों में मात्राओं का क्रम अलग-अलग हो; जैसे—आर्या।

ऐसे मात्रिक छंद हिंदी में बहुत प्रचलित हैं जिनमें चार से अधिक चरण होते हैं। उन्हें भी 'मात्रिक विषम' छंदों में गिन सकते हैं; अतएव 'मात्रिक विषम' छंद का व्यापक लक्षण यह होगा—'जो छंद मात्रिक सम

---

* कुछ ऐसे भी छंद होते हैं, जिनमें चरण तो चार ही होते हैं, पर वे लिखे दो ही पंक्तियों में जाते हैं; यथा—दोहा, सोरठा, बरवै, उल्लाल आदि। ऐसे छंदों की प्रत्येक पंक्ति को 'दल' कहते हैं।

या मात्रिक अर्द्धसम न हों, वे 'मात्रिक विषम' हैं; जैसे—कुंडलिया और छप्पय। ये दोनों छह छह चरणों के छंद हैं और दो दो छंदों के मिश्रण से बने हैं। यही इनकी विषमता है।

मात्रिक सम छंद दो प्रकार के होते हैं—(१) साधारण और (२) दंडक। जिन छंदों के प्रत्येक चरण में ३२ या इससे कम मात्राएँ हों उन्हें 'साधारण' कहते हैं और इससे अधिक मात्रावाले छंद 'दंडक' कहलाते हैं।

१—'वर्णिक सम' छंद वे हैं जिनके चारों चरणों में 'वर्णों' या 'गणों' का क्रम समान हो; जैसे—वसंततिलका, इंद्रवज्रा, मालिनी, त्रोटक, दुर्मिल (सवैया) आदि।

२—'वर्णिक अर्द्धसम' छंद वे हैं जिनके पहले-तीसरे तथा दूसरे-चौथे चरणों में वर्ण का क्रम तथा संख्या समान हो।

३—'वर्णिक सम' वे छंद हैं जिनके चारों चरणों में वर्ण-संख्या भिन्न-भिन्न हो *।

वर्णिक विषम के भी दो भेद होते हैं—(१) साधारण और (२) दंडक। २६ वर्णों तक के वृत्त 'साधारण वृत्त' कहलाते हैं और इसके अधिक वर्णवाले 'दंडक वृत्त' कहे जाते हैं। वर्णिक दंडकों में मनहरण कवित्त, रूप-घनाक्षरी और देवघनाक्षरी बहुत प्रसिद्ध हैं।

नीचे के वृक्ष से छंदों के भेदोपभेदों का विवरण बहुत स्पष्ट हो जायगा—

---

* वर्णिक अर्द्धसम और वर्णिक विषम का प्रचार हिंदी में बहुत ही कम—प्रायः नहीं के बराबर है।

बाइस वर्णों से लेकर छब्बीस वर्णों तक के छंद 'सवैया' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

छंद
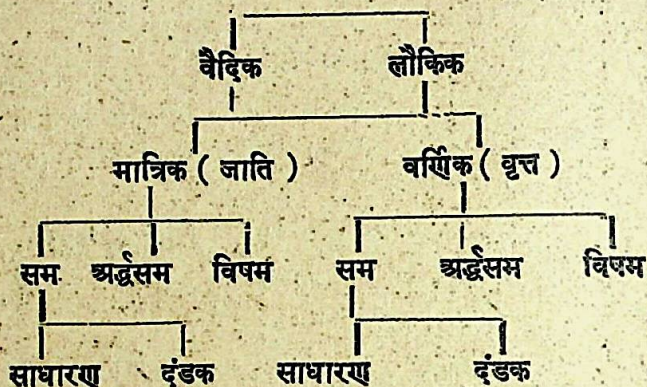
मात्रिक छंद और वर्णिक छंद की पहचान के लिए इन बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) जिस छंद के चारों चरणों में या तो वर्ण समान हों या केवल वर्ण-क्रम एक-सा हो अर्थात् लघु-गुरु समान क्रम से मिलें वह वर्णिक छंद होगा। वर्णिक समवृत्तों में अक्षर तो समान होते ही हैं, साथ ही लघु-गुरु का क्रम एक-सा रहने से मात्राएँ भी बराबर ही होती हैं।

(२) जिस छंद के पदों में गुरु-लघु का कोई क्रम न हो, पर मात्राओं में समानता हो वह मात्रिक छंद होगा।

(९) संख्यासूचक शब्द

काव्य में अनेक स्थलों पर संख्या सूचित करने का काम पड़ता है। परंतु छंद के अनुरोध से मात्राओं की न्यूनाधिकता अथवा वर्ण की असु-विधा के कारण एक, दो, तीन, चार आदि संख्याएँ लिखने में अनेक अड़चनें

पड़ती हैं। अतएव कवि लोग प्रायः संख्यासूचक शब्द का प्रयोग करते हैं। नीचे एक से बीस तक की संख्याओं के लिए शब्द लिखे जाते हैं।

शून्य—आकाश।

एक—पृथ्वी, चंद्रमा, आत्मा।

दो—आँख, पक्ष, हस्त, सर्पजिह्वा, नदी-कूल।

तीन—गुण, राम, काल, अग्नि, शिव-नेत्र, ताप।

चार—वेद, वर्ण, आश्रम, ब्रह्मा के मुख, युग, धाम, पदार्थ, पाद।

पाँच—काम-शर, इंद्रिय, शिव-मुख, पांडव, गति, प्राण, कन्या, यज्ञ, वर्ग, गव्य।

छह—ऋतु, राग, रस, वेदांग, शास्त्र, ईति, कार्त्तिकेय के मुख, भ्रमर के पद।

सात—मुनि, स्वर, पर्वत, समुद्र, लोक, सूर्य के घोड़े, वार, पुरी, गोत्र, ताल।

आठ—सिद्धि, वसु, प्रहर, नाग, दिग्गज, योग।

नव—भूखंड, अंक, निधि, ग्रह, भक्ति, नाड़ी, रंध्र, द्रव्य।

दस—दिशा, दशा, अवतार, दोष।

ग्यारह—शिव।

बारह—सूर्य, राशि, भूषण, मास।

तेरह—नदी, परम भागवत, किरण।

चौदह—भुवन, रत्न, मनु, विद्या।

पंद्रह—तिथि।

सोलह—संस्कार, शृंगार, कला।

सत्रह—इसके लिए कोई शब्द नहीं है। एक और सात के कोई दो संकेत मिलाकर काम निकाला जाता है।

अट्ठारह—पुराण।

उन्नीस—इसके लिए भी कोई शब्द नहीं है। एक और नौ के कोई

दो संकेत मिलाकर काम चलाया जाता है।

बीस—नख।

उक्त संकेतों से संख्या का काम लेने में एक बड़ा भारी सुभीता यह है कि हम इनके बदले इनके पर्यायवाची शब्दों का भी उपयोग कर सकते हैं। चंद्रमा के लिए शशि, इंदु आदि अथवा शिव के लिए रुद्र, शंभु, ईश इत्यादि लिखने में कोई दोष नहीं।

कविता में अंक लिखने के लिए आचार्यों ने एक नियम निर्धारित कर लिया है कि अंकों की गति दाहिनी ओर से बाईं ओर को होती है (अंकानां वामतो गतिः)। यदि हमें १७ का बोध कराना होगा तो 'चंद्र स्वर' न कहकर 'स्वर चंद्र' कहेंगे। शब्द-क्रम से 'स्वर चंद्र' से ७१ का बोध होता है, परंतु उक्त नियम के अनुसार १७ का ही बोध होगा।

(१०) तुक

'तुक' कान का विषय है। छंद के चरणांत में एक-से स्वरवाले एक या अनेक अक्षर आ जाते हैं, उन्हीं को 'तुक' कहते हैं। कोई-कोई इन्हें 'अंत्यानुप्रास' के नाम से शब्दालंकारों में गिनते हैं। तुक कविता के लिए अनिवार्य नहीं कही जा सकती, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि इससे कविता में लयगत सौंदर्य आ जाता है, पद्य अधिक श्रुतिमधुर एवं चित्ताकर्षक हो जाता है। कम से कम गीत-काव्य तो बिना तुक के रोचक हो नहीं सकता। मनुष्य की प्रवृत्ति ही तुकमय है। अशिक्षित और गँवार लोगों के जातीय गानों में भी तुक मिली रहती है। तुक का न मिलना कानों को कुछ खटक अवश्य जाता है। इन्हीं सब कारणों से हिंदी-कविता में प्रारंभ से ही तुक की प्रधानता रही है। दूसरे हिंदी-कविता का उत्थान और उत्कर्ष वीरगाथा-काव्यों एवं गीत-काव्यों से हुआ है। अतएव तुक का मिलना इसमें अनिवार्य था। यही कारण है कि हिंदी में तुकांत कविता का बाहुल्य है, अतुकांत कविता बहुत कम परिमाण में है। आजकल लोगों की प्रवृत्ति, अँगरेजी और

बँगला की देखादेखी हिंदी में भी, अतुकांत कविता (Blank verse) लिखने की ओर गई है, पर जिन लोगों के कानों को तुकांत कविता का मजा मिल चुका है उनको ये बेतुकी कविताएँ अवश्य खटक जाती हैं। सचमुच उनमें लय-सौंदर्य की बहुत कुछ कमी हो जाती है। परंतु हर्ष की बात तो यह है कि ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं जिनको तुकांत कविता नहीं रुचती। अतुकांत कविता के लिए कुछ खास-खास छंद ही उपयुक्त होते हैं। संस्कृत के वर्णवृत्त इसके लिए बड़े ही समीचीन प्रतीत होते हैं। उनमें वर्णक्रम इस प्रकार संघटित रहता है कि स्वभावतः बड़ी मधुर लय आ जाती है। इस लय के कारण तुक का अभाव नहीं खटकता। जिन विद्वानों ने संस्कृत के छंदों का उपयोग कर हिंदी में अतुकांत कविता की है वे पूर्णतया सफल हुए हैं। पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय का 'प्रियप्रवास' अतुकांत होने पर भी किसी भी तुकांत कविता से रोचकता तथा लय में उन्नीस नहीं है। परंतु हिंदी के मात्रिक-छंद बिना तुक के अच्छे नहीं लगते। इसका कारण यही हो सकता है कि हमारे कानों को तुकबंद रचना सुनने का ही अभ्यास पड़ गया है, इसलिए बेतुकी कविता उनको एकदम खटकने लगती हैं।

सारांश यह कि कविता में भाव ही प्रधान है। तुक तो उसके लय-सौंदर्य की वृद्धि के लिए है और इससे कविता विशेष हृदयसंवेद्य एवं सरस जान पड़ती है। अतएव जहाँ बेतुकी कविता करनी हो वहाँ उसके उपयुक्त छन्द चुन लेना चाहिए, अन्यथा लय का अभाव होने से वह पद्य फीका जान पड़ेगा। हमें तो संस्कृत के वर्ण-वृत्त ही इसके लिए विशेष उपयुक्त जान पड़ते हैं।

केवल अंत के अक्षरों का मिलना ही तुक नहीं कहलाता, किंतु उनके स्वर भी मिलने चाहिए। लय की सुंदरता के विचार से तुक भी तीन प्रकार की होती है—(१) उत्तम (२) मध्यम और (३) अधम।

१—यदि पद्य के अंत में दो गुरु (ऽऽ) आ पड़ें तो पाँच मात्राओं का समस्वर होना उत्तम है, चार का मध्यम और दो का अधम।

उत्तम

नींद बहुत प्रिय सेज-तुराई[1]। लखहु न भूप-कपट-चतुराई॥

मध्यम

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना[2]। पुर-प्रमोद[3] नहिं जाइ बखाना[4]।

अधम

राम-सीय-पद-प्रीति घनेरी। नित-प्रति नूतन होइहि मोरी॥

२—यदि पद्य के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) या लघु-गुरु (।ऽ) आ पड़ें तो पाँच और चार मात्राओं की तुक उत्तम, तीन की मध्यम, दो या एक की अधम है।

(१) कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवासु।
व्याकुल बिलपत राजगृह, मानहु सोक-निवासु॥

(२) लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय-राम-चरन-सनेहु लखि सुख पावहीं॥

मध्यम

(१) कहा होय उद्यम किए, जो प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसे उपजे खेत कों, करत सलभ निरमूल॥

(२) क्या पाप की ही जीत होती, हारता है पुण्य ही।
इस दृश्य को अवलोक कर, तो जान पड़ता है यही॥

अधम

(१) सरनि सरोरुह जल-बिहँग, कूजत गुंजत भृंग।
बैर-बिगत बिहरत बिपिन, मृग बिहंग बहु रंग॥

---

१ दुलाई, रजाई। २ तरह। ३ आनंद। ४ वर्णन नहीं किया जाता।

(२) रहती मैं अकेली तो क्या भय था, मुझे सोच न था तन का अपने
पर साथ में लाड़ले जीवन-मूर, ये छौने दुलारे हैं दोनों जने ॥

३—यदि पद्य के अंत में दो लघु (॥) आ पड़ें तो चार मात्राओं की तुक उत्तम, दो की मध्यम और एक की अधम होती है।

उत्तम

बिबिध रंग की उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकति।
कहुँ चरबी सों चटचटाति कहुँ दहदह दहकति ॥

मध्यम

व्योम को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठो पहर ॥

अधम

अकपट-चित से बन अनन्य-मन रोप युगल पग।
वे करते अनुसरन राम का नीरवता सँग ॥

भाषा-काव्य में तुकांत छह प्रकार के हो सकते हैं—

१ सर्वांत्य—जिस छंद के चारों चरणों में तुक मिलती है; जैसे—सवैया, कवित्त इत्यादि में।

२ समांत्य विषमांत्य—जिस छंद के विषम (पहले-तीसरे) चरणों का तथा सम (दूसरे-चौथे) चरणों का तुकांत एक-सा हो; जैसे—

जेहि सुमिरत सिधि होय, गन-नायक करि-वर-बदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन ॥

३ समांत्य—जिस छंद में केवल दूसरे और चौथे चरणों का तुकांत मिले; जैसे—दोहा।

४ विषमांत्य—जिसमें पहले और तीसरे चरण का तुकांत एक-सा हो; जैसे—सोरठा।

५ सम-विषमांत्य—जिस छंद में पहले-दूसरे चरणों का और

तीसरे चौथे चरणों का तुकांत एक-सा हो; जैसे—चौपाई।

६ भिन्नांत्य—जिस छंद के प्रत्येक चरण में भिन्न-भिन्न तुकांत हो उसे भिन्न तुकांत या बेतुकी कविता कहते हैं; जैसे—

पल-पल जिसके मैं पंथ को देखती थी।
निशिदिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती।
उर पर जिसके है सोहती मुक्त-माला।
वह नव नलिनी-से नैनवाला कहाँ है॥

(११) प्रत्यय

जिनके द्वारा अनेक प्रकार के छंदों के विचार और संख्या आदि प्रकट किए जाते हैं उन्हें छंदशास्त्र में 'प्रत्यय' कहते हैं। इस शास्त्र में कुल नौ प्रत्यय हैं—१ प्रस्तार, २ सूची, ३ पाताल, ४ उद्दिष्ट, ५ नष्ट, ६ मेरु, ७ खंड-मेरु, ८ पताका और ९ मर्कटी। पिंगल में इन सब पर बहुत ही विस्तृत विवेचन किया गया है। वास्तव में यह पिंगल का गणित-विभाग है। इन सबके द्वारा हम यही जान सकते हैं कि अमुक मात्रा के छंदों की संख्या कितनी हो सकती है, अमुक भेद कितनी मात्राओं की छंद-संख्या है, अमुक मात्राओं के छंद का अमुक भेद कैसा होगा इत्यादि। परंतु यह विषय आजकल किसी उपयोग में नहीं आता। अतएव इसका विशेष विवेचन करना व्यर्थ है, संक्षिप्त उल्लेख मात्र किया जाता है, रीति समझाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं।

(१) प्रस्तार में जितनी मात्रा के जितने भेद हो सकते हैं उनके रूप दिखलाए जाते हैं। प्रस्तार के स्पष्टीकरण से यह जाना जाता है कि एक मात्रा के छंद का १ भेद, दो मात्राओं के छंद के २ भेद, तीन मात्राओं के छंद के ३, चार मात्राओं के छंद के ५, पाँच मात्राओं के छंद के ८ और छह मात्राओं के छंद के १३ भेद होते हैं, इनसे अधिक नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त आगे के छंदों की संख्या

जानने के लिए पिछले दो की संख्या जोड़ देनी चाहिए। सात मात्राओं की छंद-संख्या—पाँच मात्राओं की छंद-संख्या ८ और छह मात्राओं की १३ के योग के बराबर—अर्थात् २१ होगी। इसी प्रकार और भी जान लेना चाहिए।

(२) सूची के द्वारा मात्रिक छंदों की संख्या की शुद्धता और उनके भेदों में आदि-अंत गुरु अथवा आदि-अंत लघु की संख्या सूचित होती है।

(३) पाताल के द्वारा प्रत्येक मात्रिक छंद के भेद अर्थात् उसकी संख्या का ज्ञान, लघु-गुरु, संपूर्ण मात्राएँ तथा वर्ण आदि जाने जाते हैं।

(४) यदि कोई कितनी ही मात्रा के प्रस्तार का भेद लिखकर पूछे कि यह कौन सा भेद है तो हम उद्दिष्ट द्वारा उसका उत्तर जान सकते हैं।

(५) नष्ट के द्वारा कितनी ही मात्रा के प्रस्तार के किसी भेद का स्वरूप जाना जाता है।

(६) जितनी मात्रा के संपूर्ण प्रस्तार के भेदों अर्थात् छंदों के रूपों में जितने-जितने गुरु और जितने-जितने लघु के जितने रूप होते हैं उनकी संख्या दिखलाने को मेरु कहते हैं।

(७) खंडमेरु का भी वही प्रयोजन है जो मेरु का।

(८) मेरु के द्वारा गुरु और लघु के जितने-जितने भेद प्रकाशित होते हैं, पताका के द्वारा उतने-उतने भेदों के योग्य-स्थान जाने जाते हैं।

(९) मर्कटी के द्वारा मात्रा के प्रस्तार में लघु-गुरु, सर्वकला और सब वर्णों की संख्या जानी जाती है तथापि सूची, प्रस्तार, नष्ट और उद्दिष्ट ये चार ही विशेष प्रयोजनीय हैं, अन्य पाँच प्रत्यय केवल कौतुक हैं। अतएव इनके न जानने से भी कोई विशेष हानि नहीं है।

(१२) मात्रिक छंद

(१) तोमर

'तोमर राशि[1] गल[2] अंत ।'

तोमर छंद का प्रत्येक चरण १२ मात्राओं का होता है। अंत में गुरु-लघु (ऽ।) होते हैं।

उदाहरण—

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु व्याल[3] ॥
कोप्यो समर श्रीराम। चल बिसिख[4] निसित[5] निकाम[6] ॥

(२) उल्लाला *

'उल्लाला तेरह कला ।'

उल्लाला छंद के प्रत्येक चरण में १३-१३ मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण—

बात पुरानी उड़ गई गया पुराना ढंग है।
नई सभ्यता आ गई, चढ़ा नया अब रंग है।

(३) चौपई

'तिथि गल अंत चौपई माहिं ।'

चौपई के प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु-लघु (ऽ।) आते हैं।

---

१ बारह। २ गुरु-लघु। ३ सर्प। ४ बाण। ५ तेज, चोखा। ६ सुंदर।

* इसीसे मिलता जुलता एक 'उल्लाल' छंद है। किसी-किसी ने उसको भी 'उल्लाला' लिख दिया है। वह मात्रिक अर्द्धसम छंद है। उसके पहले तीसरे पदों में १५-१५ और दूसरे-चौथे पदों में १३-१३ मात्राएँ होती हैं। यथा—

जहँ धन-विद्या बरसत रही, सदा अबै वाही ठहर।
बरसत सब ही विधि बेबसी, अब तो चेतौ बीर-वर ॥

उदाहरण—

उपवन में अति भरी उमंग।
कलियाँ खिलती हैं बहुरंग॥
पर मिलता है उनको मान।
जो हैं सुखद सुगंध-निधान [1]॥

(४) चौपाई

'गल सोरह जत बिन चौपाई।'

चौपाई के प्रत्येक पद में १६ मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में जगण (।ऽ।) अथवा तगण (ऽऽ।) का निषेध है, अर्थात् गुरु लघु (ऽ।) न आने चाहिए। अंत में एक लघु के होने से लय खटकने लगती है; परंतु दो लघु साथ आ जाने से यह दोष नहीं रहने पाता।

उदाहरण—

जहँ लगि[2] नाथ नेह[3] अरु नाते[4]।
पिय-बिनु तियहि तरनि[5] तें ताते[6]॥
तनु धनु धाम धरनि सुरराजू[7]।
पति-विहीन सबु सोक-समाजू॥

(५) रोला

'रखिए गल चौबीस, शंभु[8] सरिता[9] यति रोला।'

इसके प्रत्येक चरण में ११ और १३ के विश्राम से २४ मात्राएँ होती हैं। जिस रोला के चारों चरणों में ग्यारहवीं मात्रा लघु हो उसे 'काव्य-छंद' कहते हैं। प्रायः इसके चरणांत में दो गुरु रखे जाते हैं। पर अंत में चार लघु या गुरु-लघु-लघु का क्रम भी मिलता है।

---

१ खजाना। २ तक। ३ प्रेम। ४ संबंध। ५ सूर्य। ६ गरम। ७ इंद्रलोक। ८ ग्यारह। ९ तेरह।

नव उज्ज्वल जल-धार, हार-हीरक[१]-सी सोहति ।
बिच-बिच छहरति बूँद, मध्य मुकुता-मनि-पोहति[२] ॥
लोल[३] लहर लहि पवन, एक पै इक इमि आवत ।
जिमि-नर-गन-मन विविध मनोरथ करत मिटावत ॥

(६) रूपमाला

'रत्न दिशि गल रूपमाला, राखिए गल अंत ।'

चौदह और दस मात्राओं की यति से चौबीस मात्राओं का रूपमाला छंद होता है । अंत में गुरु-लघु (ऽ।) होना चाहिए । आदि में एक त्रिकल (ऽ।) के बाद एक द्विकल का आना आवश्यक जान पड़ता है । इसका एक नाम 'मदन' भी है ।

उदाहरण—

जात है बन बादि ही[४] गल बाधिकै बहुतंत्र ।
धामहीं किन जपत कामद, राम-नाम सुमंत्र ॥
ज्ञान की करि गूदरी दृढ़, तत्व तिलक बनाव ।
'दास' परम अनूप सद्गुन, रूपमाला गाव ॥

(७) गीतिका

'रत्न[५] रवि[६] गल अंत रखिए, छंद रचिए गीतिका ।'

गीतिका के प्रत्येक पद में १४ और १२ के विराम से २६ मात्राएँ होती हैं । अंत में लघु-गुरु (।ऽ) होता है । इस छंद का एक नियम तो यह है कि प्रत्येक पद की तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्राएँ सदा लघु होती हैं । अंत में रगण (ऽ।ऽ) आ जाने से छंद श्रुतिमधुर हो जाता है ।

---

१ हीरे का हार । २ पिरोती है । ३ चंचल । ४ व्यर्थ ही । ५ चौदह । ६ बारह ।

उदाहरण—

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं।
चेत कर चलना कुमारग में कदम धरना नहीं।
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं।
बोध-वर्धक लेख लिखने में कमी करना नहीं।

(८) सार

'यति सोरह रबि, अंते दो गुरु, छंद सार रचु नीको।'

इस छंद के प्रत्येक चरण में १६, १२ के विश्राम से २८ मात्राएँ होती हैं। अंत में दो गुरु आते हैं। इसे 'ललितपद' भी कहते हैं।

उदाहरण—

प्रकटहु रविकुल-रवि निसि बीती प्रजा-कमल-गन फूले।
मंद परे रिपुगन[1] तारा-सम, जन[2]-भय-तम[3] उनमूले[4]॥
नसे चोर लंपट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध-बंदी-सूत-चिरैयन[5] मिलि कल-रोर[6] मचायो॥

(९) हरिगीतिका

'श्रृंगार दिनकर पै बिराम, लगंत में हरिगीतिका।'

हरिगीतिका के प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं। १६, १२ पर यति होती है। अंत में लघु-गुरु (।ऽ) होना चाहिए। इसका क्रम यों होना चाहिए—२+३+४+३+४;३+४+५ । जहाँ चौकल है वहाँ जगण (।ऽ।) अति निषिद्ध है। अंत में रगण (ऽ।ऽ)श्रुतिसुखद होता है। पाँचवी, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवी मात्राएँ लघु रहने से धारा ठीक रहती है।

---

१ शत्रु लोग। २ दास। ३ अंधकार। ४ नष्ट हो गया। ५ मागध बंदी और सूत रूपी पक्षियों ने। ६ मधुर ध्वनि।

उदाहरण—

निज धर्म का पालन करो, चारों फलों की प्राप्ति हो।
दुख-दाह,[१] आधि-व्याधि[२] सबकी एक साथ समाप्ति हो॥
ऊपर कि नीचे एक भी सुर[३] है नहीं ऐसा कहीं।
सत्कर्म में रत[४] देख तुमको जो सहायक हो नहीं॥

(१०) वीर

'सोरह तिथि[५] यति अंत गला[६] हो, गाओ वीर छंद अभिराम।

सोलह और पंद्रह की यति से ३१ मात्राओं का वीर छंद होता है। अंत में गुरु-लघु होता है। इस छंद को 'आल्हा' भी कहते हैं।

उदाहरण—

सुमिरि भवानी जगदंबा[७] का श्रीसारद के चरन मनाय।
आदि-सरस्वति तुमको ध्यावों, माता कंठ बिराजौ आय।
जोति बखानौ जगदंबा कै, जिनकी कला बरनि ना जाय।
सरद-चंद[८]-सम आनन[९] राजै, अति छबि अंग-अंग रहि छाय॥

(११) त्रिभंगी

'दिसि[१०] सिधि[११] बसु[१२] संगी, जन रस[१३] रंगी,
छंद त्रिभंगी, गांत भलो।'

यह छंद ३२ मात्राओं का होता है। १०, ८, ८, ६ पर यति होती है। अंत में गुरु होता है। इसके किसी चौकल में जगण (।ऽ।) न पड़ने पाए।

उदाहरण—

परसत पद-पावन, सोक-नसावन प्रकट भई तम-पुंज सही।
देखत रघुनायक, जन-सुख-दायक, संमुख है कर जोरि रही॥

---

१ दुख की जलन। २ मन का और शरीर का कष्ट। ३ देवता। ४ लीन। ५ पंद्रह। ६ गुरु-लघु। ७ जगज्जननी पार्वती। ८ शरद् ऋतु का चंद्रमा। ९ मुख। १० दस। ११ आठ। १२ आठ। १३ छह।

अति प्रेम-अधीरा, पुलक सरीरा, मुख नहिं आवै बचन कही।
अतिसय[1] बड़भागी चरनन लागी, जुगल नयन जल-धार बही॥

(१२) बरवै

'बिषमै रवि कल बरवै सम मुनि[2] साज।'

बरवै छंद के विषम अर्थात् पहले तीसरे पदों में १२ मात्राएँ और सम अर्थात् दूसरे-चौथे चरणों में ७ मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक दल * में १९-१९ मात्राएँ हो जाती हैं। सम पदों के अंत में जगण (।ऽ।) रोचक होता है।

उदाहरण—

अब जीवन कइ है कपि, आस न कोइ।
कनगुरिया[3] कइ मुँदरी, कँगना[4] होइ॥

(१३) दोहा

'विषम सरित ज न सिव समनि, दोहा गल रखि अंत'

दोहे के पहले और तीसरे अर्थात् विषम चरणों में १३-१३ तथा सम (दूसरे-चौथे) चरणों में ११-११ मात्राएँ होती हैं। विषम चरणों के आदि में जगण वर्जित है। सम चरणों के अंत में गुरु-लघु होना चाहिए।

उदाहरण—

थोरेई गुन रीझते, विसराई वह बानि[5]।
तुमहू कान्ह मनौ भए, आज-काल्हि के दानि॥

(१४) सोरठा

'तेरह सम बिषमेस, उलटे दोहा सोरठा।'

सोरठा दोहे के ठीक विपरीत होता है अर्थात् दोहे के सम चरण सोरठे के विषम और दोहे के विषम चरण सोरठे के सम चरण हो जाते हैं। इसके विषम चरणों में ११ तथा सम चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं।

---

* देखिए पृष्ठ १३४ की पाद-टिप्पणी।

१. अत्यंत। २. सात। ३. कनिष्ठिका अँगुली। ४. कंकण। ५. आदत, स्वभाव।

उदाहरण—

जाँचै बारह मास, पियै पपीहा स्वाति-जल।
जान्यो 'तुलसीदास' जोगवत नेही मेह[1]-मन॥

(१५) कुंडलिया

'दोहा रोला कुंडलित करि कुंडलिया होय।'

कुंडलिया में २४-२४ मात्राओं के छह पद होते हैं। इस प्रकार १४४ मात्राओं का यह 'मात्रिक विषम छंद' है। आदि में दो दलों का एक दोहा और उसके बाद चार पदों का एक रोला जोड़कर कुंडलिया छंद बनता है। दोहे के प्रथम चरण के आदि के कुछ शब्दों का रोला के चतुर्थ चरण के अंतिम शब्दों के साथ और दोहे के चतुर्थ चरण का रोला के आदि से सिंहावलोकन* होना आवश्यक है। कुंडलिया के पाँचवें चरण के पूर्वार्द्ध में प्रायः कवि का नाम रहता है।

उदाहरण—

चिंता-ज्वाल सरीर-बन दावा[2] लगि लगि जाय।
प्रगट धुआँ नहिं देखियत, उर-अंतर धुँधुवाय[3]॥
उर अंतर धुँधुवाय, जरै ज्यों काँच की भट्टी।
जरि गो लोहू माँस, रहि गई हाड़ की टट्टी॥
कह 'गिरधर कबिराय', सुनो रे मेरे मिंता।
वे नर कैसे जियैं, जाहि तन व्यापै चिंता॥

(१६) छप्पय

'बिरचहु छप्पय छंद को, धरि रोला उल्लाल।'

छप्पय भी छह पदों का मात्रिक विषम छंद है, इसके आदि में २४-२४ मात्राओं के चार पद रोला के होते हैं। अंतिम दो दल या तो २८-२८

---

* देखिए पृष्ठ ४७।

१ मेघ, बादल। २ दावाग्नि। ३ हृदय में भीतर ही भीतर सुलगती है।

मात्राओं के उल्लाल छंद के अथवा २६-२६ मात्राओं के उल्लाला के होते हैं।

उदाहरण—

(१) नीलांबर परिधान[1], हरित पटपर[2] सुंदर है।
सूर्य-चंद्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर[3] है॥
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडन[4] हैं।
वंदीजन खग-वृंद, शेष-फण सिंहासन हैं।
करते अभिषेक पयोद[5] हैं, बलिहारी इस वेश की।
हे मातृ-भूमि! तू सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेश[6] की॥

(२) भीति[7] भंजिनी भुजा, शक्ति दलिता[8] आहों की।
उमड़े उर की आग, दवा दारुण दाहों[9] की॥
शौर्य[10] धैर्य की धरा, सपूती।की शुचि शाला[11]।
भाग्य-चक्र की धुरी, विजय की मंजुल माला॥
रण-चंडी की संगिनी, विभीषिका[12] की धार है।
काली का अवतार है, नहीं! नहीं! तलवार है॥

(१३) वर्णिक छंद

(१) इंद्रवज्रा

'ता ता ज गा गा शुभ इंद्रवज्रा'

यह ग्यारह अक्षरों का वर्णवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'त त ज ग ग' (SSI, SSI, ISI, SS) होता है।

उदाहरण—

आधार कोई जिनका नहीं है।
हा! दुःख ही दुःख सभी कहीं है॥

---

१ पहिनने का नीला वस्त्र। २ हरा मैदान। ३ समुद्र करधनी है। ४ गहना। ५ बादल। ६ ईश्वर। ७ भय। ८ कुचली हुई। ९ जलन। १० शूरता। ११ पवित्र घर। १२ भीषणता।

तू ही उन्हें आकर गोद लेती।
हे मृत्यु! तू ही चिर-शांति[1] देती॥

(२) उपेंद्रवज्रा

'ज ता ज गा गाइ उपेंद्रवज्रा'

यह भी ग्यारह अक्षरों का वर्णवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'ज त ज ग ग' (।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ) होता है। 'इंद्रवज्रा' का पहला अक्षर लघु कर देने से ही उपेंद्रवज्रा वृत्त बनता है।

उदाहरण—

बलाभिमानी धरणी-धनेश[2]।
कहो, कहाँ हैं अब वे जनेश[3]?
चले गए हैं सब आप-आप।
हुआ न दो ही दिन का प्रताप!

इस छंद के पदांत के वर्ण विकल्प से दीर्घ ही माने जायँगे।

सूचना—'इंद्रवज्रा' और 'उपेंद्रवज्रा' के चरणों के मिलने से कई प्रकार के छंद बनते हैं, जिन्हें 'उपजाति' कहते हैं। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

सद्धर्म का मार्ग तुम्हीं बताते।
तुम्हीं अघों[4] से हमको बचाते॥
हे ग्रंथ विद्वान तुम्हीं बनाते।
तुम्हीं दुखों से हमको छुड़ाते॥

(३) वंशस्थविलम्

'विचार वंशस्थ ज ता ज रा करो'

यह बारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'ज त ज र' (।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ) होता है।

---

१ बहुत दिनों तक रहनेवाली शांति। २ पृथ्वी और धन के स्वामी। ३ राजा। ४ पापों।

उदाहरण—

सशांति आते उड़ते निकुंज में।
सशांति जाते ढिग[1] थे प्रसून[2] के ॥
बने महा-नीरव[3]-शांत - संयमी।
सशांति पीते मधु को मिलिंद[4] थे ॥

(४) तोटक

'रख चार स तोटक को रचिए'

यह भी बारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में चार सगण (॥ऽ ॥ऽ ॥ऽ ॥ऽ) होते हैं।

उदाहरण—

जितने गुण-सागर नागर[5] हैं।
कहते यह बात उजागर[6] हैं ॥
अब यद्यपि दुर्बल आरत[7] है।
पर भारत के सम भारत है ॥

(५) भुजंगप्रयात

'य हैं चार ही यों भुजंगप्रयातम्'

यह भी बारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में चार यगण (।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ) रहते हैं।

उदाहरण—

कहूँ किन्नरी[8] किन्नरी[9] लै बजावैं।
सुरी[10] आसुरी[11] बाँसुरी गीत गावैं।

---

१ पास। २ फूल। ३ मौन। ४ भौंरे। ५ चतुर। ६ प्रसिद्ध। ७ आर्त, दुखी। ८ किन्नरों की कन्याएँ। ९ सारंगी। १० देवताओं की कन्याएँ। ११ असुरों की कन्याएँ।

कहूँ यच्छिनी[१] पच्छिनी[२] को पढ़ावैं।
नगी-कन्यका[३] पन्नगी[४] को नचावैं॥

(६) द्रुतविलंबित

'द्रुतविलंबित के नभ भार है'

इसमें बारह अक्षर होते हैं। प्रत्येक चरण में 'न भ भ र' (।।। ऽ।। ऽ।। ऽ।ऽ) होता है इसे 'सुंदरी' भी कहते हैं।

उदाहरण—

मन! रमा[५] रमणी[६] रमणीयता।
मिल गईं यदि ये विधि-योग[७] से।
पर जिसे न मिली कविता-सुधा।
रसिकता सिकता[८]-सम है उसे॥

(७) मोतियदाम

'धरो शुभ मोतियदाम ज चार'

इसके प्रत्येक चरण में चार जगण (।ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ।) रहते हैं।

उदाहरण—

अदेवन की उर आनि अनीति।
निबाहन को सुर-पालन-रीति॥
सुधारन को जन को अधिकार।
धर्‍यो हरि बामन को अवतार॥

(८) वसंततिलका

'गाओ वसंततिलका त भ जा ज गा गो'

यह चौदह अक्षरों का छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 'त भ ज ज ग ग' (ऽऽ। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ। ऽऽ) रहता है।

---

१ यक्षों की कन्याएँ। २ मैना, कोकिल आदि पक्षी। ३ पार्वत्य देशों की कन्याएँ। ४ सर्पों की कन्याएँ। ५ लक्ष्मी। ६ स्त्री। ७ संयोग से, दैवात्। ८ बालू।

उदाहरण—

रे क्रोध, जो सतत[1] अग्नि बिना जलावे।
भस्मावशेष नर के तनु को बनावे॥
ऐसा न और मुझ-सा जग-बीच पाया।
हारे विलोक हम किंतु न दृष्टि आया॥

(९) मालिनी

'रच न न म य या से, मालिनी सिद्धि लोक'

यह पंद्रह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'न न म य य' (।।। ।।। ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ) होता है। इसकी यति ८, ७ अक्षरों पर पड़ती है।

उदाहरण—

प्रिय पति वह मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है?
दुख-जलनिधि-डूबी[2] का सहारा कहाँ है?
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ?
वह हृदय हमारा नेत्र-तारा[3] कहाँ है?

(१०) शिखरिणी

'रस[4] स्थाणू[5] युक्ता य म न स भ ला गा शिखरिणी'

इस वृत्त में १७ अक्षर होते हैं। ६, ११ पर विराम होता है। प्रत्येक चरण में 'य म न स भ ल ग' (।ऽऽ ऽऽऽ ।।। ।।ऽ ऽ।। ।ऽ) होता है।

उदाहरण—

किए जाने से भी फिर-फिर सदा प्रश्न तुमसे।
नहीं होते जी में कुपित तुम हे ग्रंथ! हमसे॥

---

१ बराबर, निरंतर। २ दुःखरूपी समुद्र में डूबी हुई ('यशोदा')। ३ आँखों की पुतली। ४ छह। ५ शिव, ग्यारह।

तथा शिक्षा देते तुम नित बिना ताड़न[1] हमें।
अतः हो क्यों प्यारे फिर तुम हमारे न जग में॥

(११) मंदाक्रांता

'मंदाक्रांता श्रुति[2] रस[3], पुरी[4] मा भ ना ता त गा गा'

इसमें १७ अक्षर होते हैं। प्रत्येक चरण में 'म भ न त त ग ग' (SSS S|| ||| SS| SS| SS) होता है। ४, ६, ७ पर विराम होता है।

तारे डूबे तम[5] टल गया छा गई व्योम[6] लाली।
पंछी बोले तमचुर[7] जगे ज्योति फैली दिशा में।
शाखा डोली सकल तरु की कंज[8] फूले सरों में।
धीरे-धीरे दिनकर[9] कढ़े तामसी[10] रात बीती॥

(१२) शार्दूलविक्रीड़ित

'है सूर्य[11]स्वर[12] मा स जा स त त गा शार्दूलविक्रीडितम्'

इसमें १९ अक्षर होते हैं। १२, ७ पर विराम होता है। प्रत्येक चरण में, म स ज स त त ग' (SSS ||S |S| ||S SS| SS| S) होता है।

उदाहरण—

प्रातःकाल अपूर्व यान[13] मँगवा औ साथ ले सारथी।
ऊधो गोकुल को चले सदय हो स्नेहांबु[14] से भीगते॥
वे आए जिस काल कांत[15] व्रज में देखा महा मुग्ध हो।
श्रीवृंदावन की मनोज्ञ[16] मधुरा श्यामायमाना[17]मही॥

(१३) मदिरा सवैया

'भा सत से गुरु से मदिरा बनती अति मंजुल मोदमयी'

---

१ दंड। २ चार। ३ छह। ४ सात। ५ अंधकार। ६ आकाश। ७ ताम्रचूड़, मुर्गा। ८ कमल। ९ सूर्य। १० अंधकारयुक्त। ११ बारह। १२ सात। १३ सवारी, रथ। १४ आँसू। १५ सुंदर। १६ मनोहर। १७ श्याम के रंग में रँगी।

सात भगण (ऽ।।) और एक गुरु प्रत्येक चरण में रखने से बाईस अक्षरों द्वारा 'मदिरा' सवैया बनता है।

उदाहरण—

सिंधु तर्‌यो उनको बनरा तुम पै[1] धनु-रेख गई न तरी।
बाँदर बाँधत सो न बँध्यो उन बारिधि बाँधिकै बाट[2] करी।
श्रीरघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलहु तूलहू[3] पूँछि जरी[4] न जरी[5] जरी लंक जराइ-जरी[6]॥

(१४) मत्तगयंद सवैया

'मत्तगयंद रचो रखि भा सत द्वै ग मनोहर मंजु सवैया'

बाईस से छब्बीस अक्षरों तक के वर्ण-वृत्त 'सवैया' कहलाते हैं। इनमें 'मत्तगयंद' बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध है। इसके प्रत्येक चरण में सात भगण और दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

मोतिन-कैसी[7] मनोहर माल गुहै तुक-अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ, कथा हरि नाम की, बात अनूठी बनाइ सुनावै।
'ठाकुर' सो कबि भावत मोहिं जो राज-सभा में बड़प्पन पावै।
पंडित और प्रबीनन को जोइ चित्त हरै सो कबित्त[8] कहावै॥

(१५) सुमुखी सवैया

'जु बार[9] लगै सुमुखी तब होय मनोहरता सब लोग चहै'

इस सवैया के प्रत्येक चरण में सात जगण (।ऽ।) और लघुगुरु अर्थात् तेईस अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

गहौ पद-पंकज जाहि लखे सिव[10], गंग-तरंग बही जिन ते।
लजै रबि-नंदिनि[11] जा परसे, भ्रसते नहि दोष दुसै[12] तिन ते॥

---

१ से। २ रास्ता। ३ रूई। ४ युक्त। ५ जली। ६ रत्न-जटित। ७ समान। ८ कविता। ९ सात। १० कल्याण। ११ यमुना। १२ दुःसह।

निसा-मद-मोह, महादुख-दानव[1], राम-कृपाहिं मिटे किन ते[2]।
रटौ निसि-बासर नाम-उदारन, लोकन मैं न बड़ो इन ते ॥

(१६) दुर्मिल

'रखि आठ स को रचिए मन दै अति उत्तम दुर्मिल-दुर्मिल को'

इस सवैया में आठ सगण होते हैं।

उदाहरण—

तन की दुति स्याम सरोरुह[4] लोचन कंज की मंजुलताई[5] हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि-भरे, छबि भूरि[6] अनंग[7] की दूरि धरैं।
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि[8]-ज्यों किलकैं कल[9] बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा 'तुलसी'-मन मंदिर मैं बिहरैं ॥

(१७) सुंदरी सवैया

'बसु[10] सो गुरु लाय भजो भगवानहिं सुंदरि साथ चलौ हे सयाने'

इस सवैया के प्रत्येक चरण में आठ सगण (।।ऽ) और एक गुरु वर्ण अर्थात् पच्चीस अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

भुव-भारहिं संयुत राकस[11] को गन जाय रसातल मैं अनुराग्यो।
जग मैं जय सव्द समेतहि 'केसव' राज बिभीषन के सिर जाग्यौ।
मय-दानव-नंदिनि[12] के सुख सों मिलिकै सियके हियको दुख भाग्यो।
सुर-दुंदुभि-सीस गजा[13] सर रामको रावनके सिर साथहि लाग्यो ॥

(१८) मनहरण कवित्त

'आठ जाम जोग लोक[14] गुरु पद अंत राखि[15],
भक्तिरस ध्याय सत मन हर लेत है।'

---

१ राक्षस। २ क्या वे नहीं मिटे (अवश्य मिट गए)। ३ द्युति, कांति। ४ कमल। ५ सुंदरता। ६ अत्यन्त। ७ कामदेव। ८ छोटे छोटे दाँत बिजली की तरह चमकते हैं। ९ सुंदर। १० आठ। ११ राक्षस। १२ मंदोदरी। १३ वह लकड़ी जिससे नगाड़ा बजाया जाता है। १४ इसमें ८,८,८,७ इस प्रकार ३१ वर्ण होते हैं। १५ अंत में गुरु रहता है।

यह दंडक वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में ३१ अक्षर होते हैं। १६ और १५ अक्षरों पर विराम होता है, अंत में एक गुरु वर्ण।

उदाहरण—

उकुति[1] अनेक ही[2] पै एकहू न कही पूरै,
टेक तौ हमारी कैकईहू तें सठिन[3] है।
कहै पद्माकर' न छाया है छमा[4] की ऐसी,
काया[5] कलि[6] क्रोध-मोह-माया की मठिन[7] है।
यातें गुह[8] गीध[9] लौं सो बीधियो न[10] मो सों राम!
मेरी मति घोर या कठोर कमठिन[11] है।
लंका-गढ़ तोरिबे तें रावन सों रोरिबे तें[12]।
मोहि भव-बंधन तें छोरबो कठिन है॥

(१६) रूपघनाक्षरी

सिद्धि जोग बसु जास राम है अनूप रूप
घन-अक्षरी है भक्ति भवसिंधु अंत मेल।'*

इस घनाक्षरी के प्रत्येक चरण में १६-१६ वर्णों के विराम से बत्तीस अक्षर होते हैं। अंत में एक 'लघु' होता है।

उदाहरण—

प्रभु रुख पाइकै[13] बोलाइ बाल घरनिहिं[14],
वंदिकै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि-घेरि।
छोटो-सो कठौता भरि आनि[15] पानी गंगाजू को,
धोइ पायँ पीयत पुनीत बारि फेरि-फेरि।

---

१ कथन (बात)। २ थी। ३ दुष्टा। ४ पृथ्वी। ५ शरीर। ६ पाप। ७ घर। ८ निषादराज। ९ जटायु। १० मत लगना। ११ कच्छपी। १२ लड़ने से। १३ स्वीकृति पाकर। १४ बालक और स्त्री को। १५ लाकर।

* इसमें ८,८,८,८ यों ३२ अक्षर होते हैं। अंत में लघु रहता है।
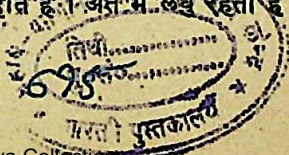
'तुलसी' सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय-जय कहैं टेरि-टेरि।
बिबुध सनेह-सानी बानी असयानी[1] सुनि,
हँसे राघौ[2] जानकी लषन तन[3] हेरि-हेरि॥

(२०) देवघनाक्षरी

'राम योग भक्ति* भेव जानि जपै महादेव,
घन अक्षरी सी उठै दामिनि दमकि-दमकि।'

इस घनाक्षरी के प्रत्येक चरण में ८, ८, ८, ९ के विराम से ३३ अक्षर होते हैं। अंत के तीन अक्षर लघु रहते हैं।

उदाहरण--

झिल्ली[4] झनकारैं[5] पिक[6] चातक पुकारैं बन,
मोरनि गुहारैं उठैं जुगुनु चमकि-चमकि॥
घोर-घन-कारे भारे धुरवा[7] धुरारे[8] धाय,
धूमनि मचावैं नाचै दामिनी दमकि-दमकि[10]।
मूकनि बयारि[11] बहै, लूकनि[12] लगावै अंग,
हूकनि[13] भभूकनि[14] की उरमैं खमकि-खमकि[15]।
कैसे करि राखौं प्रान प्यारे जसवंत बिना,
नान्हीं-नान्हीं बूँद झरैं मेघवा झमकि-झमकि[16]॥

---

१ चतुराई से रहित, निष्कपट। २ राघव, रामचंद्र। ३ ओर। ४ झींगुर। ५ बोलते हैं। ६ कोयल। ७ जोर से बोलते हैं। ८ बादलों के टुकड़े। ९ धूल से बने हुए। १० बिजली चमक-चमक कर। ११ वायु। तेजी के साथ चलती है। १२ आग। १३ पीड़ा। १४ ज्वाला। १५ प्रज्वलित हो कर। १६ घिर-घिरकर।

* तीन बार ८ फिर ९ अक्षर होते हैं।